बेहतरी की कहानियां

सहराना की नई सुबह

सरकार/समुदाय और संस्थान की साझा पहल

VIKAS SAMVAD

CHILD RIGHTS AND YOU

शीर्षकः सहराना की नई सुबह

संपादनः
राकेश कुमार मालवीय, पिंकी वर्मा,
रामकुमार विद्यार्थी, पूजा सिंह, विश्वम्भर त्रिपाठी

सहयोग :
अजय सिंह यादव, आरती पाराशर

मार्गदर्शन :
सचिन कुमार जैन

प्रस्तावना :
संदीप नाईक

स्टोरीज :
अजय सिंह यादव, रानी जाटव, संदीप नाईक, सुनील शर्मा, संजय धाकड़, ज्योति वर्मा, अमन नम्र, आरती पाराशर, राकेश कुमार मालवीय

फोटो :
गगन नायर, अजय कुमार यादव, पिंकी वर्मा

वर्षः 2023
प्रतियांः 500
डिज़ाइनरः यशवंत कुशवाहा

प्रकाशक
विकास संवाद
ए-5 आयकर कॉलोनी, जी-3, गुलमोहर कॉलोनी,
बावड़ियां कलां, भोपाल, (म.प्र)- 462039
वेबसाइटः www.vssmp.org
फोन न. 0755-4252789
contact@vssmp.org

प्रकाशन सहयोग
चाइल्ड राइट्स एंड यू

इस पुस्तिका में शामिल सभी कहानियों में सम्बंधित/बच्चों से सामग्री के प्रकाशन की लिखित सहमती/अनुमति ली गई है ।

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ
1	यूँ थमी सहरिया गांवों में बाल मृत्यु	12
2	आदित्य की कहानी	16
3	कुपोषण का उपचार है सुपोषण	18
4	साझा पहल से सुपोषित हुई कुंजा	20
5	तमन ने कैसे जीती कुपोषण से जंग	22
6	कठिन परिस्थितियों में बच्चों का जीवन	24
7	मुर्गीपालन यानी आजीविका और पोषण साथ-साथ	26
8	मुर्गीपालन और पोषण वाटिका ने रोका पलायन	28
9	कुकड़ूकूं... से दूर हुआ सहरिया समुदाय का कुपोषण	30
10	जल संरचना से खाद्य सुरक्षा का संरक्षण	33
11	गहरे हुए तालाब तो रुका पलायन, बदल गई जिंदगी	35
12	बोरी बंधान की सामुदायिक पहलः डूब से बचाव और बंपर फसल	38
13	तपेदिक (टीबी) और परंपराओं की चुनौती	41
14	तपेदिक, नशा और गरीबी–वंचितपन का त्रिकोण	44
15	सब्बाराम कैसे हुए तपेदिक से मुक्त?	46
16	तपेदिक और नशे के खिलाफ जारी है नीरज की जंग	48
17	बीमारियों से बड़ी है इलाज की चुनौती	50
18	शरीर से ज्यादा मन को दुखाता माहवारी का दर्द	52
19	तपेदिक–जानकारी भी उपचार है!	54
20	तपेदिक को रोकने की कवायद	56
21	महिलाओं ने ली मचाखुर्द को नशा मुक्त करने की शपथ	58
22	अब जाखनोद की महिलायें बदल रही हैं गाँव की पहचान!	60
23	परामर्श से भी बच सकता है बच्चों और महिलाओं का जीवन	62
24	गंभीर एनीमिया से जूझने का जज्बा है यहाँ!	65
25	नैना के जीवन का संघर्ष	68
26	जामवती की कहानी बन सकती है समाधान!	70

बेहतरी के लिए चार कदम

सहरिया का अर्थ है शेर के साथ रहने वाला आदिवासी समुदाय। यह समुदाय आज विलुप्त होने की कगार पर है। यह सदियों से जंगलों में या जंगलों के आसपास रहता आ रहा है। सहरिया मूलरूप से मध्यप्रदेश के श्योपुर, शिवपुरी जिले और राजस्थान के बारां और कोटा जिले के जंगलों के आसपास ही रहते हैं। मध्यप्रदेश के शिवपुरी और पोहरी ब्लॉक की बात करें तो पोहरी मुख्य रूप से सहरिया आदिवासी बाहुल्य ब्लॉक है। इस ब्लाक में 252 गांव हैं, जिनमें से 111 गांव सहरिया आदिवासियों के हैं। इसी प्रकार शिवपुरी जिले के 1225 गांव में से 180 गांव सहरिया जनजाति के हैं।

सहरिया आदिवासियों का खाना-पीना जंगलों के भरोसे ही होता आया है। धान, ज्वार, कोदो, कुटकी जैसी फसलों पर इनका जीवन आधारित है। ज्यादातर उन्हें जंगलों से ही पोषण की सामग्री, जैसे अनाज, मांस और सब्जियां मिलती थीं। उस समय सहरिया समुदाय में कुपोषण बहुत ही कम था। तेज सिंह, 80 वर्ष के हैं। वे मड़खेडा गांव के रहने वाले हैं। वे कहते हैं, "हमारे समय में हम अधिकांश भोजन की व्यवस्था जंगलों से ही करते थे, और हमारे सहरिया में कुपोषण को कोई जानता भी नहीं था कि कुपोषण क्या होता है? उस समय खाने में देशी और पोषण युक्त भोजन मिलता था, जिसमें किसी प्रकार की कोई कीटनाशक दवा का उपयोग नहीं करता था। उस समय फसल में कोई कीड़े भी नहीं लगते थे।"

लेकिन आजादी के बाद अन्य आदिवासियों की तरह धीरे-धीरे सरकारों ने सहरिया को जंगलों से हटाना शुरू किया। जंगलों को सरकार ने अपने अधीन किया, और इसे रेंज फॉरेस्ट को एक विभाग के रूप में विकसित किया गया। उस समय रेंज विभाग द्वारा जंगलों का सीमांकन किया गया। जिसमें बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण हुआ और जंगलों में चहारदीवारी, तार फेंसिंग कर आदिवासियों के साथ ही अन्य लोगों के जंगल में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। रेंज फॉरेस्ट का इतना दबाव है कि यदि कोई जंगल में प्रवेश करता तो उसको दंडित किया जाता है, यहां तक कि समुदाय के जानवर भी जंगल में प्रवेश करते हैं तो उनके मालिकों को जेल में बंद कर दिया जाता है।

बालाघाट, छिंदवाड़ा, डिंडौरी जैसे जिलों में कई सरपंचों को इसके लिए सजा काटते हुए देखा गया है। सहरियाओं के जीवन पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। वहीं, सरकार के संरक्षण में जाने के बाद भी आज हम देखें तो जंगलों का 30 से 40% हिस्सा कट गया है, अब वे जंगल नहीं रहे जो पहले हुआ करते थे। आज गांव के लोगों से बात करने पर पता चलता है कि पहले गांव के आसपास ही जंगल हुआ करते थे, पर अब कोसों दूर तक नामोनिशान नहीं मिलता। यह भी उल्लेखनीय है कि पहले गांव वाले जंगलों की रक्षा-सुरक्षा करते थे तो जैव विविधता बनी रहती थी, पर आज वृक्षारोपण के नाम पर सिर्फ सागौन या नगदी देने वाले पेड़-पौधों का ही उपयोग किया जा रहा है।

एक तरह यहां का पारिस्थिक तंत्र प्रभावित हुआ है बुरी तरह से। देखने में यह भी आ रहा है कि रेंज फॉरेस्ट देखभाल करता है, और वही इन जंगलों को कटवा रहा है। "जबकि आदिवासी जंगलों की पूजा करते थे और आज भी कर रहे हैं।" 90 साल के बुजुर्ग बृजभान आदिवासी जो शिवपुरी जिले के पोहरी तहसील के सोनीपुरा के निवासी हैं, वे बताते हैं कि 'हमारे समाज के देवी-देवताओं में एकलव्य नाम का एक आदिवासी था, जिसने अपने समाज के लिए रास्ता दिखाया। इसलिए हम सबसे बड़ा देवता उसी को मानते हैं, जिसने अपने गुरू रूपी भगवान को वरदान में अपने हाथ का अंगूठा दान किया था। उसी समय से हमारे सहरिया के हाथ उस अंगूठा दान देने की वजह से कमजोर है।' वे कहते हैं 'आप किसी भी सहरिया को देख लेना, उसके हाथ के अंगूठा से गठान नहीं खुलेगी। यह असली सहरिया की पहचान है। हमारे समाज में एक और बहन थी शबरी, जिसने भगवान के लिए सब-कुछ अर्पण किया। तब भगवान ने शबरी के झूठे बेर खाए। हम सहरिया समाज आज भी शबरी की पूजा करते है।

कहने का मतलब यह है कि सहरिया जाति में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। हमारा समाज हमेशा से सरल, ईमानदार और मेहनती रहा है'। यह कहते हुए बृजभान आदिवासी का चेहरा गर्व से दमकने लगता है। आज अधिकांश सहरिया या तो छोटे किसान हैं या मजदूर हैं। जमीन के नाम पर सहरिया परिवारों के पास दो से तीन बीघा जमीन है। वह भी पथरीली है। गांवों में जो जमीन अच्छी और उपजाऊ है, उस पर दबंग लोगों का कब्जा है। इसलिए सहरिया ज्यादातर मजदूरी पर ही निर्भर हैं और इसके लिए भी उन्हें प्रतिवर्ष आठ से दस महीने पलायन करना पड़ता है। वे आसपास और राजस्थान, गुजरात, दिल्ली, यूपी में पलायन पर जाते हैं और मजदूरी कर अपने परिवार का भरण पोषण करते हैं। इस दौरान गेहूं की कटाई और धान लगाने तथा आलू खोदने बहुत से सहरिया आगरा जाते हैं। पोहरी ब्लॉक से ही हर साल कुल पलायन करने वालों में 80 से 90% आदिवासी सहरिया होते हैं।

सहरियाओं का रहन-सहन और संस्कृति

इनका रहन-सहन और धार्मिक मान्यताएं क्षेत्र के अन्य हिंदू समाज जैसी ही हैं। रामदुलारी आदिवासी मचाखुर्द ने बताया कि 'हमारे समाज में गोदना गुदाने की परंपरा अभी भी प्रचलित है। जो मेले लगते हैं उनमें ज्यादातर महिलाएं अपने शरीर को गुदवाती हैं।" सहरिया जनजाति में मांस का प्रचलन भोजन में आज भी है, परन्तु अब गरीबी के कारण कम मांस खा पाते हैं। अब उनके पास इतना रुपया नहीं कि वे खरीदकर खा सकें। पर वे शराब और बीड़ी के विशेष शौकीन हैं। सहरिया अन्य जातियों से हटकर काम करते हैं मसलन शादी-ब्याह आदि में अपने पूर्वजों की परम्पराओं का पालन करते हैं, समाज की पंचायत की उपस्थिति में स्वयं निर्णय लेते हैं।

सहरिया के देवी-देवता वैसे तो सामान्य ही होते हैं, परन्तु इस समुदाय के कुछ देवी-देवता अलग ही होते हैं। इनमें तेजाजी खईस बाबा, जिन्द बाबा, दरेंठ बाबा को खास माना जाता है। अन्य समाजों की तरह सहरिया में भी विभिन्न गोत्र हैं, जैसे– चौहान, वारेलिया, करोदया, सेमरिया, सौहरों, खिल्लां, खडरिया, बजरैठिया, वाजुल्ला, पलैया, चॉदिया, पहलुआ, ढोडिया, पैरूआ, सिलोरेया, रारीया दचेईया, झिलमिलिया, नरवरिया, बदोदिया,

गोवईया, पारोदिया और राजपूत। आजकल सहरियाओं में कुपोषण इस तरह है कि शिशु मृत्यु और सहरिया एक दूसरे के पूरक से बन गए हैं। तमाम प्रयासों और सुविधाओं, कई जागरूकता कार्यक्रम चलाने के बाद भी यह समुदाय शिशुओं की मौत झेलने और देखने के लिए मानो अभिशप्त है। हर बार पोषण या हर बार के नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे में सहरिया समुदाय में शिशु मृत्यु दर के आंकड़े सर्वाधिक होते हैं।

सरकार ने सहरिया विशेष प्राधिकरण बनाए हैं और शिक्षा, स्वास्थ्य से लेकर जागरूकता के कई कार्यक्रम भी चलाए, परन्तु हर बार नतीजे वही रहे। स्वैच्छिक संस्थाओं ने श्योपुर, शिवपुरी से लेकर कोटा और बारां के इलाकों में सघन अभियान चलाए, लेकिन लम्बे समय तक बहुत सार्थक प्रयास नहीं निकले। 1995-96 में जब राजस्थान में तत्कालीन कैबिनेट सचिव स्व. अनिल बोर्दिया ने लोक जुम्बिश परियोजना आरम्भ की थी तो बारां जिले को चुना था और शाहाबाद में संकल्प नामक संस्था ने ग्राम मामोनी में रहकर इस समुदाय के साथ काम आरम्भ किया था। शुरुआती दौर में लोग बात तक करने से कतराते थे, और जब हम लोग उनसे मिलने गांवों में जाते तो पूरा समुदाय जंगल में भाग जाता था। मोतीलाल और चारु ने बड़े श्रम और लगन से इस समुदाय को जागृत किया और शिक्षा के माध्यम से अपनी पैठ बनाकर बड़ा काम किया।

कुपोषण का दाग, सहरिया और विकास संवाद की पहल

शिवपुरी में विकास संवाद ने लगभग दस साल पहले पोहरी में समस्या को समझकर कुपोषण से निपटने के लिए समन्वित प्रयास आरम्भ किया था। जिला समन्वयक अजय यादव बताते हैं कि शुरुआती दौर में इस समुदाय के साथ काम करने में बड़ी दिक्कतें आईं। लोग ना सिर्फ बात करना पसंद नहीं करते थे, बल्कि नशे आदि की वजह से झगड़ा और मार-पीट बहुत सामान्य था। एक तरफ बच्चे लगातार दम तोड़ देते थे तो दूसरी ओर महिलाओं के लिए प्रसव की पर्याप्त सुविधाएं नहीं थीं, वे संस्थागत प्रसव भी नहीं करवाती थीं, ना ही कुपोषित बच्चों को पोषण पुनर्वास केंद्र में रखने को तैयार होती थीं। उनकी समझ यह थी कि बच्चा मर जाए तो मर जाए, अगले साल फिर पैदा कर लेंगे। कुपोषण की वजह से टीबी और बाकी बीमारियां भी बहुत फैल चुकी थीं। कई गांव तो अभी भी ऐसे हैं, जहां कम उम्र की महिलाएं विधवा हो चुकी हैं।

उन सभी के पति की मृत्यु टीबी की वजह से हुई है और इनकी संख्या एक गांव में 32 से 40 तक है। परन्तु स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही जा रही थी।

ऐसे में विकास संवाद ने कुपोषण की समस्या को समुदाय आधारित प्रबन्धन से खत्म करने की पहल की। विकास संवाद के निदेशक सचिन कुमार जैन बताते हैं– 'कुपोषण और शिशु मृत्यु दर का सीधा सम्बन्ध है, सिर्फ आंगनवाड़ी से दलिया या टेक होम राशन देने से इस समस्या का समाधान नहीं निकल सकता। जब तक आप पूरे समुदाय को अपने कार्यक्रमों में शामिल कर योजना बनाने से लेकर क्रियान्वयन तक में भागीदार नहीं बनाएंगे तब तक हम कुछ हासिल नहीं कर पाएंगे।' विकास संवाद ने कुपोषण की समस्या को खत्म करने के लिए कई स्तर पर काम किए-लोगों की भागीदारी उनकी आजीविका की समस्या, उनके खेती में बदलाव कर, घरों में किचन गार्डन की पहल, शिक्षा, स्वास्थ्य और टीबी के लिए विशेष प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध करवाना और सबसे ज्यादा संस्थागत प्रसव को सुनिश्चित करवा कर, पोषण पुनर्वास केन्द्रों में कुपोषित बच्चों को भर्ती करवाया ताकि हर जन्में शिशु की देखभाल सही तरीके से हो सके।

इसके लिए पोहरी ब्लॉक के 15 गांवों में लम्बे समय तक काम करके एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया है। पिछले पांच वर्षों से इसे सघन रूप से क्रियान्वित किया जा रहा है। 15 गांव की समस्याओं व चुनौतियों को विशेष ध्यान में रखकर योजना बनाई गई। इसकी रणनीति भी बनाई गई कि इन समस्याओं के समाधान के लिए कैसे काम किया जाए? इसे लेकर टीम ने समुदाय के साथ अपनी योजना बनाई। विभिन्न सरकारी विभागों के साथ समन्वय किया गया, विशेष रूप से स्वास्थ्य, महिला बाल विकास, पशुपालन, कृषि और उद्यानिकी वे विभाग थे, जिनके साथ समन्वय और विशेष काम करने की जरूरत सामने दिखी।

हम चलेंगे साथ साथ

मातृ मृत्यु, शिशु मृत्यु को कम या खत्म करने के लिए विभिन्न शासकीय विभागों की भूमिका अहम होती है। इसके लिए संस्था द्वारा विभागों से बेहतरी के समन्वय कर इन गांवों में योजनाओं को संचालित करने का प्रयास किया गया, ताकि समय से नियमित आंगनवाड़ी केंद्र खुलें, वहां कार्यकर्ता अपने निर्धारित कार्यों को करें, नियमित नाश्ता, भोजन और टेक होम राशन का वितरण हो। बच्चों की नियमित

ग्रोथ मॉनिटरिंग की जाए। इसी प्रकार नियमित एएनएम का भ्रमण कार्यक्रम बने एवं हर गांव में शासन के निर्देशानुसार ग्राम स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस हो, यह निश्चित करवाया गया। संस्थागत प्रसव को बढ़ावा मिले ताकि सभी प्रसव सुरक्षित और कुशल चिकित्सा स्टाफ की निगरानी में हों। पशुपालन, कृषि और उद्यानिकी विभाग की योजनाओं का क्रियान्वन समुदाय के स्तर पर हो, इसके लिए प्रयास किए गए। इसमें मुर्गीपालन हेतु उन्नत ब्रीड के चूजे, किचन गार्डन हेतु बीज वितरण तथा खेती में फसलों के संरक्षण और अधिक उपज हेतु जैविक खेती के लिए तकनीकी ज्ञान पर भी चर्चा की गई। सुशासन के लिए हर गांव में वैधानिक समितियों के साथ योजना निर्माण, पंचायत की भूमिका पर योजना बनाई गई। इस सबके लिए संस्था ने समुदाय का प्रशिक्षण किया और क्षमता वृद्धि के साथ उनकी सोच में बदलाव करने के प्रयास हुए।

फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं की क्षमता वृद्धि

परियोजना के गांवों में संचालित योजना का क्रियान्वयन अधिकांशतः फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं के द्वारा किया जाता है, जिसके लिए इन कार्यकर्ताओं की क्षमता वृद्धि महत्वपूर्ण पहलू था। संस्था की ओर से हर स्तर पर फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं की क्षमता वृद्धि का प्रयास किया गया ताकि योजनाओं के संचालन में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। साथ ही इन योजनाओं के संचालन में संस्था द्वारा सहयोग किया गया और बृद्धि निगरानी ग्राम दिवस व परामर्श सेवाएं, गृह भेंट एवं रिकार्ड आदि के रख-रखाव के लिए संस्था के लोगों ने शुरुआती दौर में मदद की और अब यह काम फ्रंट लाइन कार्यकर्ता खुद कर रहे हैं।

समुदाय के स्तर पर प्रयास

परियोजना वाले गांव में समुदाय के स्तर पर प्रयास किया गया कि गांव में सबको योजनाओं की जानकारी और लाभ कैसे मिलें? योजनाओं के क्रियान्वयन और निगरानी के लिए समुदाय के स्तर पर विभिन्न समूहों का गठन किया गया, जिसमें कोर ग्रुप, किशोरी समूह, युवा समूह एवं बाल समूह शामिल हैं। इन समूहों की हर माह बैठक कर योजनाओं की जानकारी दी जाती है, जिससे अपने गांव में योजनाओं का संचालन और

निगरानी गांव में ही हो सकें और इन समूहों से जुड़े लोग ही यह महती काम करते हैं।

प्रत्येक गर्भवती एवं धात्री माता के घर सीएमसी सलाहकार और कम्युनिटी मोबिलाइजर के द्वारा गृहभेंट कर अपना पंजीयन, टीकाकरण, स्वास्थ्य सेवाओं एवं संस्थागत प्रसव, प्रसवोपरांत एक घंटे में शिशु को माँ का पहला पीला गाढ़ा दूध पिलाने की सलाह दी जाती है।

प्रत्येक घर में उन्नत किस्म की ब्रीड का मुर्गी पालन करवाया गया है, जिससे खाने की थाली में मांस और अंडा सबको मिल सकें और समय आने पर मुर्गा बेचकर अपनी आवश्यकताएं पूरी की जा सकें।

गर्भवती एवं धात्री माताओं के घर किचन गार्डन लगवाए गए हैं, जिससे उन्हें खाने में अपने ही घर के किचन गार्डन से हरी और ताजी सब्जियां मिल सकें। यह देखा गया है कि सब्जियों के उपयोग से भोजन की थाली रंगीन हुई है और कुपोषण काफी हद तक कम हुआ है।

प्रत्येक पहली बार गर्भवती हुई महिलाओं को मातृ वन्दना योजना में पंजीयन करवा कर योजना का लाभ दिलवाया गया है, जिससे गर्भावस्था में उन्हें पर्याप्त आराम और पोषण युक्त भोजन मिल सकें।

मातृ एवं शिशु मृत्यु दर पर नियन्त्रण

परियोजना के 15 गांवों में से 6 गांव- आमई, जटवारा, ग्वालीपुरा, माधोपुर, बटकाखेड़ी एवं मड़खेड़ा में सार्थक बदलाव दिखाई दिया है. आश्चर्यजनक रूप से इन गांवों में पिछले तीन वर्ष में एक भी मातृ मृत्यु, शिशु मृत्यु तथा बाल मृत्यु नहीं हुई है। परियोजना अधिकारी अमित यादव कहते हैं "विकास संवाद ने जो समन्वित प्रयास किए हैं वे बेहतरीन हैं और सहरियाओं के साथ अब महिला बाल विकास विभाग को भी बात करने में संकोच या हिचक नहीं होती है बल्कि हमारे लिए अब काम करना आसान हो गया है" आंगनवाड़ी कार्यकर्ता सुनीता यादव कहती हैं "पहले तो हमें कुछ भी नहीं आता था, हम पढ़े-लिखे भी नहीं थे, पर लगातार हमें संस्था से प्रशिक्षण मिला। अब हम वजन ही नहीं तौल लेते, बल्कि ग्रोथ मॉनिटरिंग भी कर लेते हैं, बाल मृत्यु नहीं हो रही। यह बड़ी ख़ुशी की बात है।"

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए समुदाय आधारित प्रबंधन

बदलाव के सिद्धांत का मॉडल

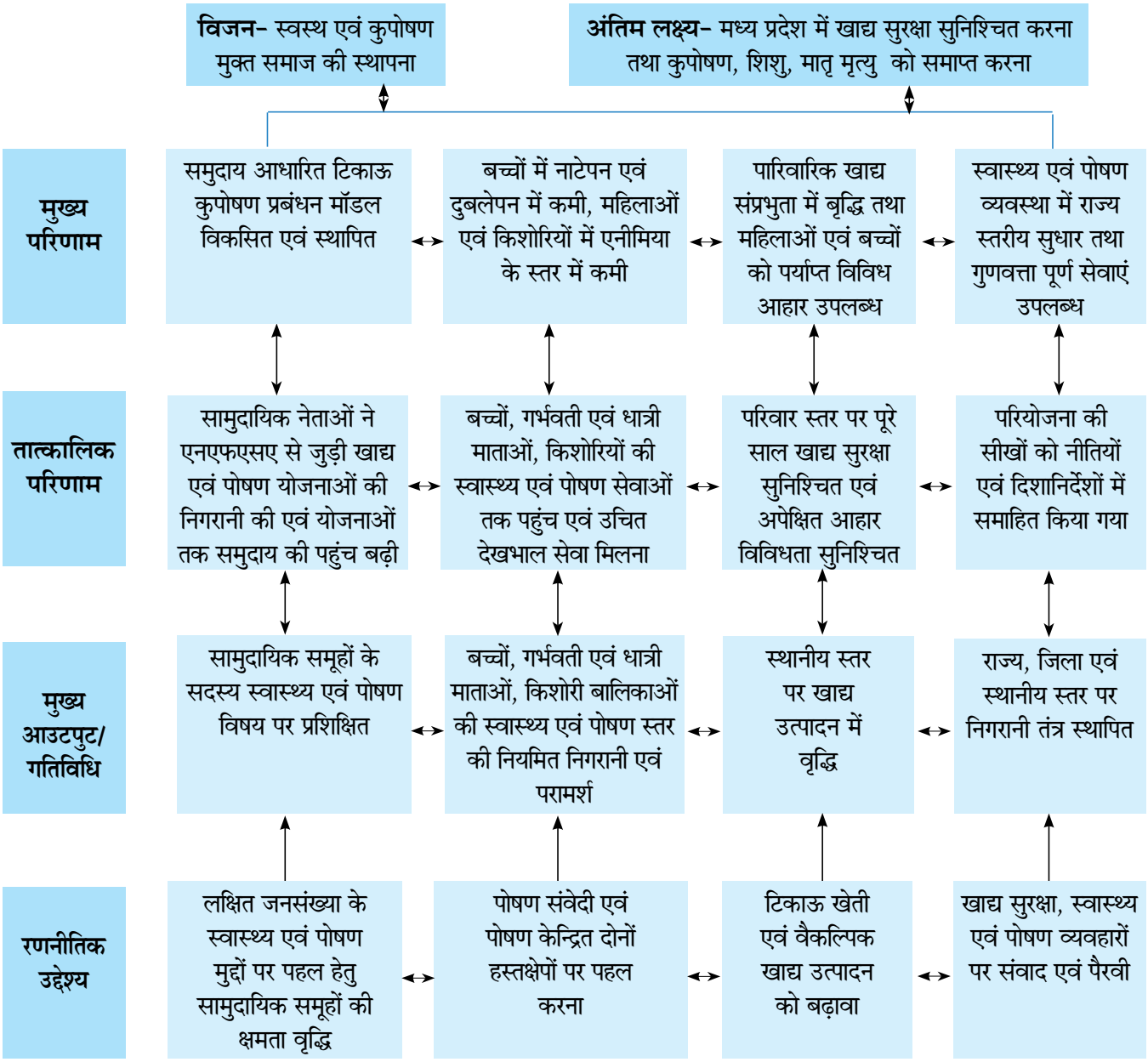

अवधारणात्मक ढांचा- खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए समुदाय आधारित प्रबंधन

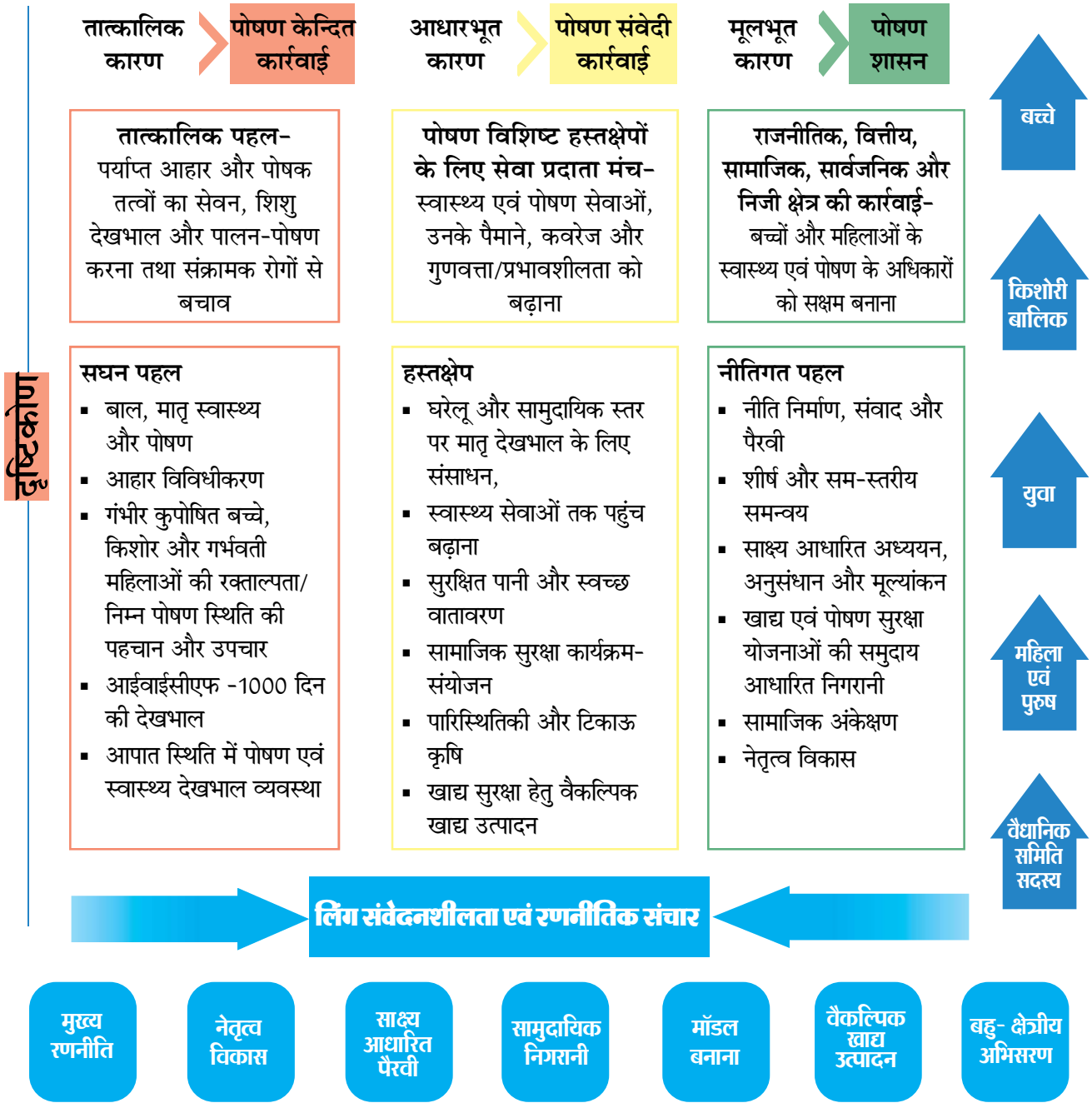

यूं थमी सहरिया गांवों में बाल मृत्यु

अगर हम आपसे मध्यप्रदेश के ऐसे पांच आदिवासी या सहरिया बहुल गांवों के नाम बताने को कहें जहां बीते एक या दो सालों में एक भी मातृ या शिशु मृत्यु का मामला सामने नहीं आया हो, तो यह बताना मुश्किल होगा। दरअसल मध्यप्रदेश में सहरियाओं में कुपोषण इस कदर है कि शिशु मृत्यु और सहरिया एक दूसरे के पूरक बन गए हैं। यह समुदाय शिशुओं की मौत झेलने और देखने के लिए मानो अभिशप्त है। हर नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे में सहरिया समुदाय में शिशु मृत्यु दर के आंकड़े सर्वाधिक होते हैं। इन्हीं विषम हालात और भयावह आंकड़ों के बीच प्रदेश के शिवपुरी जिले के आमई, जटवारा, बटकाखेड़ी, मड़खेड़ा, माधोपुरा ऐसे गांव हैं, जिनमें पिछले तीन वर्ष में मातृ एवं शिशु मृत्यु का एक भी मामला सामने नहीं आया है। और यह संभव हो पाया है कुपोषण के सामुदायिक प्रबंधन की दिशा में विकास संवाद द्वारा समुदाय तथा जमीनी अमले के समन्वय से किए गए निरंतर प्रयासों की वजह से...

आइए इन सभी गांवों में चलकर देखते हैं कि यह बदलाव आखिर हुआ कैसे?

आमई में कैसे जनभागीदारी ने किया कमाल

आमई शिवपुरी जिले के जाखनौद पंचायत का गांव है। यह ब्लॉक मुख्यालय से 6 किलोमीटर दूर श्योपुर से अहेरा रोड पर बसा है। यहां आदिवासियों के 25 और यादवों के 32 परिवार रहते हैं। गांव में एक मिनी आंगनवाड़ी केंद्र और एक प्राइमरी स्कूल है। सुनीता यादव यहां की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता है जो केवल कक्षा 5 तक ही पढ़ी-लिखी है। इस वजह से वह आंगनवाड़ी का रिकॉर्ड भी खुद नहीं बना पाती थी। किसी दूसरी कार्यकर्ता को पैसे देकर अपना रिकॉर्ड बनवाती थी। गांव में कितनी गर्भवती हैं, कितने बच्चे कुपोषित हैं, इस बारे में भी उसे कुछ पता नहीं होता था। आमई गांव में हर साल एक-दो शिशु मृत्यु होना आम बात थी।

वर्ष 2018 में हंसराज आदिवासी की पत्नी वंदना ने अपने ही घर में एक लड़की को जन्म दिया, लेकिन उचित देखभाल के अभाव में लड़की जिंदा नहीं रह पाई और महज 14 दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। समुदाय में काम करने वाली टीम के लिए यह मौत चौंकाने वाली और बहुत दुखद थी। इसके बाद टीम ने गांव में अपने काम का एक बार फिर से विश्लेषण किया और लोगों के साथ बात कर नए तरह से शिशु मृत्यु दर कम करने की कोशिशें शुरू कीं। सबकी अलग-अलग जिम्मेदारी बांटी गईं। इस काम में मुख्य भूमिका टीम के साथ आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, आशा व एएनएम के साथ टीम की भी रही है।

संवाद-समन्वय और प्रशिक्षण की रणनीति अपनाई

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता अपने केंद्र के माध्यम से समुदाय को सभी आवश्यक सेवाएं दे सकें, इसके लिए उन्हें समय-समय पर सहयोग, प्रशिक्षण दिया गया ताकि उसकी क्षमता वृद्धि हो सके। इसके साथ ही रिकॉर्ड मेंटेन रखने के लिए कार्यकर्ता के बेटे को तैयार किया गया। सीडीपीओ अमित यादव से बात कर केंद्र के लिए एक किराए का मकान लिया गया। जहां सभी जाति एवं वर्ग के लोग लोग निःसंकोच आ सकें। आशा कार्यकर्ता के साथ भी सार्थक संवाद कर प्रयास किए गए। चूंकि आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और आशा कम पढ़ी-लिखी और यादव जाति की थीं इसलिए वे आदिवासी समुदाय की बातों को गंभीरता से नहीं सुनती थीं। यही नहीं, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और आशा एक-दूसरे के घर भी नहीं जाती थीं। व्हीएचएनडी भी औपचारिकता के लिए ही होता रहा। यह एक गंभीर मसला था, इसलिए आशा कार्यकर्ता के साथ टीम ने विभागीय बात करवाई और तय करवाया कि वीएचएनडी आंगनवाड़ी केंद्र पर ही होना चाहिए।

पोषण सेवाओं की निगरानी और पहल से मिला लाभ

गांव में स्व सहायता समूह आंगनवाड़ी और स्कूल के बच्चों को ठीक से खाना देता था। इसका संचालन और प्रबंधन गांव के स्थानीय राजनीतिक व्यक्तियों के हाथ में था। इस मसले पर भी सीडीपीओ से बात की गई और मातृ सहयोगिनी समिति को यह काम दिलवाया गया।

इसके बाद बच्चों को नियमित नाश्ता और खाना मिलने लगा। इसके साथ ही गांव की वैधानिक समितियों और सामुदायिक समूहों को प्रशिक्षण और नियमित जागरूकता कार्यक्रमों से जोड़कर सरकारी योजनाओं का लाभ दिलवाने का प्रयास किया गया। इसके अलावा उनकी आजीविका और पौष्टिक आहार के लिए सरकारी विभागों के साथ मिलकर मुर्गी पालन, किचन गार्डन, बीजबैंक तथा जल संरचनाओं के संरक्षण-संवर्धन का कार्य सामुदायिक सहभागिता से किया गया। इन सबका नतीजा यह रहा कि बीते 3 वर्षों से यहां एक भी शिशु मृत्यु का मामला सामने नहीं आया।

जटवारा में आए बदलाव की कहानी

समुदाय में क्षमताओं की कोई कमी नहीं होती है, जरूरत है तो उन्हें पहचान कर समुदाय को जागृत करने की। ताकि नए प्रयोग करने और जोखिम लेकर बदलाव की बात की जा सके। कुछ ऐसा ही प्रयोग हुआ शिवपुरी जिले के जटवारा गांव में। यहां वर्ष 2017 में विकास संवाद ने समुदाय आधारित कुपोषण प्रबंधन की एक परियोजना प्रारम्भ की थी। गांव में बात करने पर पता चला कि जटवारा में मातृ और शिशु मृत्यु हर साल होती ही रहती है, लेकिन इसके लिए समुदाय अपने आपको दोषी ठहराते आ रहे थे। वे इसे अपने कर्मों का फल या दैवीय दोष और पाप मानते थे और इसे रोकने के लिए कुछ नहीं करते थे।

जटवारा, सेवाखेड़ी पंचायत का गांव है। यह पोहरी ब्लॉक मुख्यालय से 6 किलोमीटर की दूरी पर शिवपुरी रोड पर बसा है। यहां सहरिया और कुशवाह जाति के 40 परिवार रहते हैं। गांव के एक हिस्से में सहरिया आदिवासी और दूसरे हिस्से में कुशवाह रहते हैं। यहां के लोग खेती और मजदूरी पर ही निर्भर हैं। यहां एक मिनी आंगनवाड़ी केंद्र और एक प्राथमिक स्कूल है। इन्हीं से गांव के बच्चों और महिलाओं को सारी सेवाएं मिलती हैं। गांव में मातृ और शिशु मृत्यु को खत्म करने के लिए समुदाय के अंदर छिपी क्षमताओं को उभारने के लिए समुदाय के स्तर पर रणनीति बनाई गई। इसमें अलग-अलग उम्र और वर्ग के लोगों के समूह बनाए गए। समूहों की क्षमता वृद्धि करने के लिए अलग-अलग माध्यमों से प्रयास किया गया। कोशिश यह थी कि ये लोग अपनी समस्याओं को पहचान कर संगठित हों, मिल-जुलकर समाधान का प्रयास करें। अपनी क्षमताओं को पहचानें और उनका उपयोग कर सरकारी योजनाओं का लाभ ले सकें।

फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं की बढ़ाई गई क्षमता

गांव के फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं ने आंगनवाड़ी के साथ विभिन्न माध्यमों से प्रयास किया कि अपने समुदाय में स्वास्थ्य और पोषण की सेवाएं सभी जरूरतमंदों को नियमित तौर पर मिल सकें। इसके लिए कार्यकर्ताओं की क्षमता वृद्धि, योजनाओं का क्रियान्वन कराने में संस्था के प्रयास, आंगनवाड़ी आने वाले हर बच्चे की ग्रोथ मॉनीटरिंग, हर गर्भवती एवं धात्री महिला को जरूरी स्वास्थ्य और पोषण की सेवाएं देने के प्रयास समन्वित रूप से किए गए। मातृ और शिशु मृत्यु को खत्म करने के लिए सीएमसी सलाहकार एवं सामुदायिक संघचालक द्वारा सभी गर्भवती माताओं के घर नियमित भेंट कर उचित पोषण व स्वास्थ्य की सलाह दी गई। ताकि सभी गर्भवती महिलाओं का प्रसव शत-प्रतिशत संस्थागत हो, प्रसव के बाद सभी माताएं अपने शिशु को पहला पीला गाढ़ा दूध एक घंटे के अंदर पिला सकें, इसके लिए भी विशेष प्रयास किए गए।

पोषण सुरक्षा बढ़ी, शिशु और मातृ मृत्यु रुकी

समुदाय को साल के अधिकांश दिनों में नियमित आजीविका मिले, ताकि उनके पोषण के स्तर में सुधार हो। इसके लिए विभिन्न विभागों के साथ मिलकर समुदाय के लिए योजनाओं को तैयार करवाने में संस्था की टीम ने सहयोग किया। हर घर में मुर्गी पालन, किचन गार्डन जैसे कार्यक्रमों को जोड़कर लाभ दिलवाया गया। इन समन्वित प्रयासों से यह अब जटवारा गांव के समुदाय में यह देखने को मिला है कि पिछले तीन साल में एक भी शिशु और मातृ मृत्यु नहीं हुई है।

बटकाखेड़ी में यूं बदली लोगों की सोच

बटकाखेड़ी नोन्हेटाखुर्द पंचायत का गांव है। यह शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक मुख्यालय से 15 किलोमीटर दूर भटनावर मोहना रोड पर बसा है। यहां सहरिया आदिवासी समुदाय के 50 और सामान्य वर्ग के 21 परिवार रहते हैं। सहरिया और सामान्य समुदायों के अलग-अलग मोहल्ले हैं। गांव में एक मिनी आंगनवाड़ी केंद्र और एक प्राथमिक विद्यालय है। इन्हीं से बच्चों और महिलाओं को स्वास्थ्य और पौष्टिक आहार की सेवाएं मिलती हैं। गांव में हर साल एक न एक मृत्यु होती ही थी, और गांव वालों की नजर में "यह कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं थी"। समुदाय इन असमय मृत्युओं पर सेवाओं और स्वयं की भूमिका को जवाबदेह मानने के लिए कतई तैयार नहीं था। उनके हिसाब से "ये तो सब ऊपर वाले के हाथों में है, उसे जो करना है वो हो कर ही रहता है, हमारे करने-धरने से कुछ नहीं होगा"। ऐसे तमाम उदाहरणों से लैस इस गांव में जब संस्था की टीम पहुंची थी, तब ऐसे माहौल में काम करना एक बड़ी चुनौती था।

सामुदायिक समूहों का गठन कर लड़ाई की पहल की

बटकाखेड़ी में मातृ-शिशु मृत्यु दर धीरे-धीरे कम हो और अंत में पूरी तरह से खत्म हो सके, इसके लिए संस्था ने तीन स्तरों पर काम किया। इसमें समुदाय, फ्रंट लाइन कार्यकर्ता और सरकारी विभाग के साथ काम करना शामिल था। समुदाय के स्तर पर योजनाओं की जानकारी प्रचारित, प्रसारित करने के लिए और उनके विकास के लिए अलग-अलग समूह बनाए गए। इसमें कोर ग्रुप - किशोरी समूह, बाल समूह और युवा समूह शामिल थे। इन समूहों की क्षमता वृद्धि के लिए कई बैठकें और प्रशिक्षणों का आयोजन हुआ। इसी तरह समुदाय में हर गर्भवती एवं धात्री महिला का पंजीयन हो, उन्हें स्वास्थ्य और पोषण की सेवाएं मिलें इसके लिए यह सुनिश्चित किया गया कि वीएचएनडी का आयोजन गांव में नियमित रूप से हो तथा बच्चों के शत-प्रतिशत टीकाकरण, ग्रोथ

मॉनीटरिंग में समुदाय का सहयोग मिले। इसके लिए समुदाय को तैयार किया गया और काफी मशक्कत के बाद इन समूहों ने अपनी भूमिका निभानी शुरू कर दी है।

जमीनी अमले को जातिवादी चुनौती का सामना

गांव के फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता ठाकुर जाति से है और आशा कार्यकर्ता तथा एएनएम धाकड़ समुदाय से। इस तरह तीनों अलग-अलग और अपना-अपना काम कर रही थीं। किसी को किसी से कोई मतलब ही नहीं था। उनके बीच तालमेल की कमी का नुकसान ग्रामीणों को उठाना पड़ता था। यहां तक कि किसी गर्भवती के साथ डिलीवरी के लिए कोई साथ भी नहीं जाता था। हालत यह भी कि अगर कोई जाए तो ठीक और नहीं जाए तो भी कोई बात नहीं। ऐसे में लगातार उनके साथ समन्वय बनाने का प्रयास किया गया। साथ ही इनकी क्षमता वृद्धि और सहयोग किया गया, जिसके सार्थक परिणाम आए।

विभागीय समन्वय से पोषण स्तर सुधरा

मातृ और शिशु मृत्यु को कम करने के लिए विभिन्न विभागों के साथ समन्वय किया गया। इसके तहत पशुपालन विभाग, स्वास्थ्य विभाग,आईसीडीएस विभाग, उद्यानिकी विभाग, पंचायत विभाग आदि के साथ समन्वित प्रयास हुए ताकि इनकी योजनाएं समुदाय तक पहुंचें और इनका क्रियान्वयन ठीक से हो सके। इसी तरह पोषण के स्तर में सुधार के लिए मुर्गी पालन, किचन गार्डन, मोटे अनाजों के उत्पादन को लेकर किसानों को समझाकर भी विशेष प्रयास किया गया। इन सबका नतीजा है कि पिछले तीन साल से यहां एक भी मातृ और शिशु मृत्यु नहीं हुई है। इससे समुदाय के साथ सरकारी महकमा भी खुश है।

जंगल के बीच बसे मड़खेड़ा गांव की कहानी

मड़खेड़ा शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक मुख्यालय से 15 किलोमीटर दूर जंगलों के बीचों-बीच बसा हुआ है। यहां 23 परिवार सहरिया आदिवासियों के हैं। यह एसवाया पंचायत का गांव है। एसवाया यहां से करीब 20 किलोमीटर दूर है। वहां जाना भी इन लोगों के लिए एक चुनौती ही है। मातृ और शिशु मृत्यु कम करने के लिए इस गांव में किसी प्रकार की सुविधा नहीं है। यह अहेरा उपस्वास्थ्य केंद्र के अंतर्गत आता है, जो मड़खेडा से करीब 8 किलोमीटर दूर है। यह उपकेंद्र आमतौर पर खुलता ही नहीं है, ना ही यहां पर टीकाकरण जैसी मूलभूत सुविधाएं मिलती हैं। एकमात्र प्राथमिक स्कूल भी यहां से 4 किलोमीटर दूर है। रास्ते में जंगल पड़ने की वजह से बच्चे नियमित स्कूल जा नहीं पाते। गांव में आंगनवाड़ी भी नहीं है, जिससे बच्चों, महिलाओं और किशोरियों को स्वास्थ्य सुरक्षा एवं पोषण सेवा मिल सके।

जंगल क्षेत्र में नियमित टीकाकरण की चुनौती

जंगल के कारण इस गांव में टीकाकरण करने एएनएम अकेली नहीं जाती थी। ऐसे में एएनएम को साथ ले जाकर गांव में नियमित टीकाकरण करवाने में सहयोग किया गया। ताकि आदिवासी समुदाय में स्वास्थ्य एवं पोषण जागरूकता बढ़े और लोगों को सरकारी योजनाओं का लाभ मिले। इसके लिए कोर ग्रुप, किशोरी समूह और बाल समूह बनाए गए। इन समूहों की क्षमता बढ़ाने के लिए कई प्रकार की गतिविधियां की गईं। जैसे हर माह बैठक, विभिन्न मुददों पर प्रशिक्षण आदि देकर उन्हें दक्ष किया गया, ताकि वे अपने गांव में सरकारी योजनाओं का लाभ ले सकें।

मुर्गी पालन और किचन गार्डन के लिए प्रेरित किया

विभिन्न विभागों से समन्वय कर समुदाय को जोड़ने का प्रयास किया गया। इसमें पशुपालन विभाग से मुर्गी पालन, उद्यानिकी विभाग से किचन गार्डन, कृषि विभाग से मोटे अनाज के बीज, स्वास्थ्य विभाग से स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए समन्वय किया गया। यह तय किया गया कि गांव में सबको पोषण युक्त भोजन मिले जिससे महिलाओं, बच्चों में होने वाली खून की कमी दूर हो। इसके लिए समुदाय स्तर पर अपने खेतों में मोटे अनाजों की पैदावार, मुर्गी पालन, किचन गार्डन के लिए प्रेरित किया गया और सरकार के साथ मिल कर योजना बनाई गई, ताकि समुदाय के स्तर पर इन सबका क्रियान्वयन सही ढंग से करवाया जा सके।

माधोपुरा तक पहुंचने लगा सरकारी योजनाओं का फायदा

ग्वालीपुरा पंचायत में आता है माधोपुरा गांव। यह पोहरी तहसील मुख्यालय से तकरीबन 3 किलोमीटर दूर शिवपुरी रोड पर बसा हुआ है। यहां आदिवासी के 28, अनुसूचित जाति के 40, अन्य पिछड़ा वर्ग के 40 और सामान्य श्रेणी के 15 परिवार रहते हैं। जाहिर है, गांव में मिश्रित जनसंख्या है। यहां समुदाय में कुपोषण का प्रबंधन समुदाय ही करे, इसके लिए विकास संवाद संस्था द्वारा संचालित परियोजना की ओर से समुदाय स्तर पर किशोरी समूह, युवा समूह, कोर ग्रुप और बाल समूहों का गठन किया गया है। इसी के साथ वैधानिक समितियों की क्षमता वृद्धि के लिए भी हर तरह के प्रयास किए गए हैं। इन सब कामों का यह प्रभाव हुआ है कि गांव में अब लोगों को सरकारी योजनाओं का लाभ मिलने लगा है।

माधोपुरा में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और आशा कार्यकर्ता दोनों ही एक ही परिवार से हैं। ऐसे में एक काम करे तो दोनों ही अपने-अपने रिकॉर्ड को पूरा कर लेती थीं। तीनों फ्रंट लाइन कार्यकर्ता कैसे साथ में काम करें, इसे लेकर इनके साथ लगातार बैठकें, प्रशिक्षण और गांव में किए जा रहे विभिन्न सर्वेक्षण, ग्रोथ मॉनिटरिंग को साझा किया गया। उसके मुताबिक प्लान भी तैयार करवाया गया। इस तरह आंगनवाड़ी में बच्चे नियमित आने शुरू हुए और उन्हें पोषण आहार मिलने लगा। बच्चे अपनी दैनिक दिनचर्या को सीखें, वीएचएनडी नियमित हो, इसके लिए भी सहयोग किया गया।

कुपोषण खत्म करने के लिए समुदाय में मुर्गी पालन, किचन गार्डन का काम हुआ। इससे समुदाय की हर गर्भवती और धात्री माताओ को खाने में हरी सब्जी और अंडा-मांस मिलने लगा। गांव में वैधानिक समितियां और समुदाय स्तर पर परियोजना में गठित समूहो को समुदाय में संचालित योजनाओं पर लगातार प्रशिक्षण एवं जागरूकता के जरिए योजनाओं का लाभ दिलवाने का प्रयास किया गया।

कुपोषण के सामुदायिक प्रबंधन की कहानी

आदित्य की कहानी

आदित्य जब पैदा हुआ था तो उसका वजन महज 1 किलो 200 ग्राम था। वह सातवें महीने में ही इस दुनिया में आ गया था। समय से पहले बच्चें को बचाने की बड़ी चुनौती थी। आंगनवाड़ी और कार्यकर्ताओं के सहयोग से उसने यह शुरुआती चुनौती सफलतापूर्वक पार कर ली। उसका वजन भी ठीक हो गया और लंबाई भी दूसरे बच्चों की तरह हो गई। आखिर यह सब हुआ कैसे, पढ़िए आदित्य के पोषण सुरक्षा चक्र को बनाने की कहानी...

शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक से 6 किलोमीटर दूर जटवारा गांव के आदित्य की मां सखी और पिता धारा सिंह हैं। आदित्य बहुत छोटा है। उसका जन्म निर्धारित समय से पहले है। आदिवासी समुदाय के धारा सिंह गांव में ही खेत में मजदूरी कर अपने बच्चों का पालन पोषण करते हैं। उन्हें 200 रुपए दिहाड़ी के रूप में माह में 10 दिन की मजदूरी मिलती है। यह काम भी साल में बमुश्किल 6 से 7 माह ही मिल पाता है। इसके अलावा उनके परिवार की पात्रता पर्ची बनी है, जिससे सार्वजनिक प्रणाली(पीडीएस) से 26 किलो राशन प्रतिमाह मिलता है जो उनकी खाद्य सुरक्षा के लिए सहायक है। उनका घर कच्चा है। धारा सिंह की 3 बेटियां और 1 बेटा आदित्य है, जो सबसे छोटा है। परिवार से मिली जानकारी के अनुसार आदित्य का जन्म समय से पहले यानी महज 7 माह में 28 जून 2021 को जिला अस्पताल में हुआ था। तब उसका वजन 1 किलो 200 ग्राम था।

जन्म के तुरंत बाद किया एसएनसीयू में भर्ती

आदित्य का समय से पहले और कम वजन का पैदा होना एक चुनौती थी। इसलिए उसे 1 माह तक शिवपुरी जिला अस्पताल में एसएनसीयू में भर्ती रखा गया। लेकिन उसकी मां को दूध भी नहीं आ रहा था। ऐसे में बच्चे को जन्म के समय से मिलने वाले स्तनपान में कमी को लेकर बड़ी चिंता बनी रही। कम वजन का होने के कारण वह घर पर भी बार-बार बीमार पड़ता रहा। आदित्य जब भी बीमार होता उसके माता-पिता उसे जिला अस्पताल शिवपुरी ले जाते थे। बच्चे की कमजोरी को देखते हुए कार्यकर्ता उसके घर जाकर परिवार से मिलते थे और आदित्य को बार-बार स्तनपान करवाने व साफ-सफाई रखने की सलाह देते थे।

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता की सहयोगी भूमिका

आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आशा शर्मा ने गर्भावस्था का पता चलते ही आदित्य की मां का पंजीयन किया, साथ ही स्वास्थ्य और पोषण की सुविधाएं दिलवाने में मदद की।

आदित्य के घर नियमित जाकर उसकी मां सखी को पोषण की सलाह एवं टेक होम राशन दिया गया। जन्म से 6 माह तक स्तनपान की सलाह भी दी गई। इसी तरह एएनएम सुशीला ओझा ने सात माह में ही प्रसव होने की वजह से समय-समय पर घर जाकर बच्चे का टीकाकरण किया और माता के खान-पान में सुधार करने के लिए सलाह भी दी ।

निरंतर प्रयास से आदित्य के पोषण में हुआ सुधार

आदित्य को कुपोषण से बाहर निकालने के लिए हर स्तर पर निरंतर प्रयास किए गए। इसमें मां के खानपान, बच्चे को स्तनपान कराने तथा बच्चे की लगातार सफाई व मालिश के साथ ही फ्रंट लाइन कार्यकर्ता द्वारा नियमित घर जाने व सीएमसी की काउंसलिंग की अहम भूमिका रही। इन सबसे आदित्य की सेहत में सुधार होना शुरू हो गया। अप्रैल 2022 में जब आदित्य का वजन लिया गया तो वह 7 किलो 800 ग्राम का हो चुका था। उसकी ऊंचाई 65 सेंटीमीटर थी। यानी वह मध्यम श्रेणी में है।

सहयोगिनी समिति सदस्य शिमला की सराहनीय भूमिका

सखी बाई के यहां आंगनवाड़ी से जुड़े सहयोगिनी समिति के सदस्य शिमला आदिवासी ने आदित्य के लिए सराहनीय भूमिका निभाई। उसने न केवल अपने किचन गार्डन से सब्जी दी बल्कि बच्चे को एसएनसीयू में जाकर देखा और उसके माता-पिता का उत्साह बढ़ाया कि आप चिंता मत करो, घर पर बच्चों को हम देख लेंगे। आप बच्चे को ठीक करवा कर ही आना। इससे अदित्य के जीवन को सुरक्षित बनाए रखने में बहुत मदद मिली। समाज में ऐसी कहानियों को गढ़ना बहुत महत्वपूर्ण है, सामाजिक संस्थाएं इसमें अपनी भूमिका निभा रही हैं।

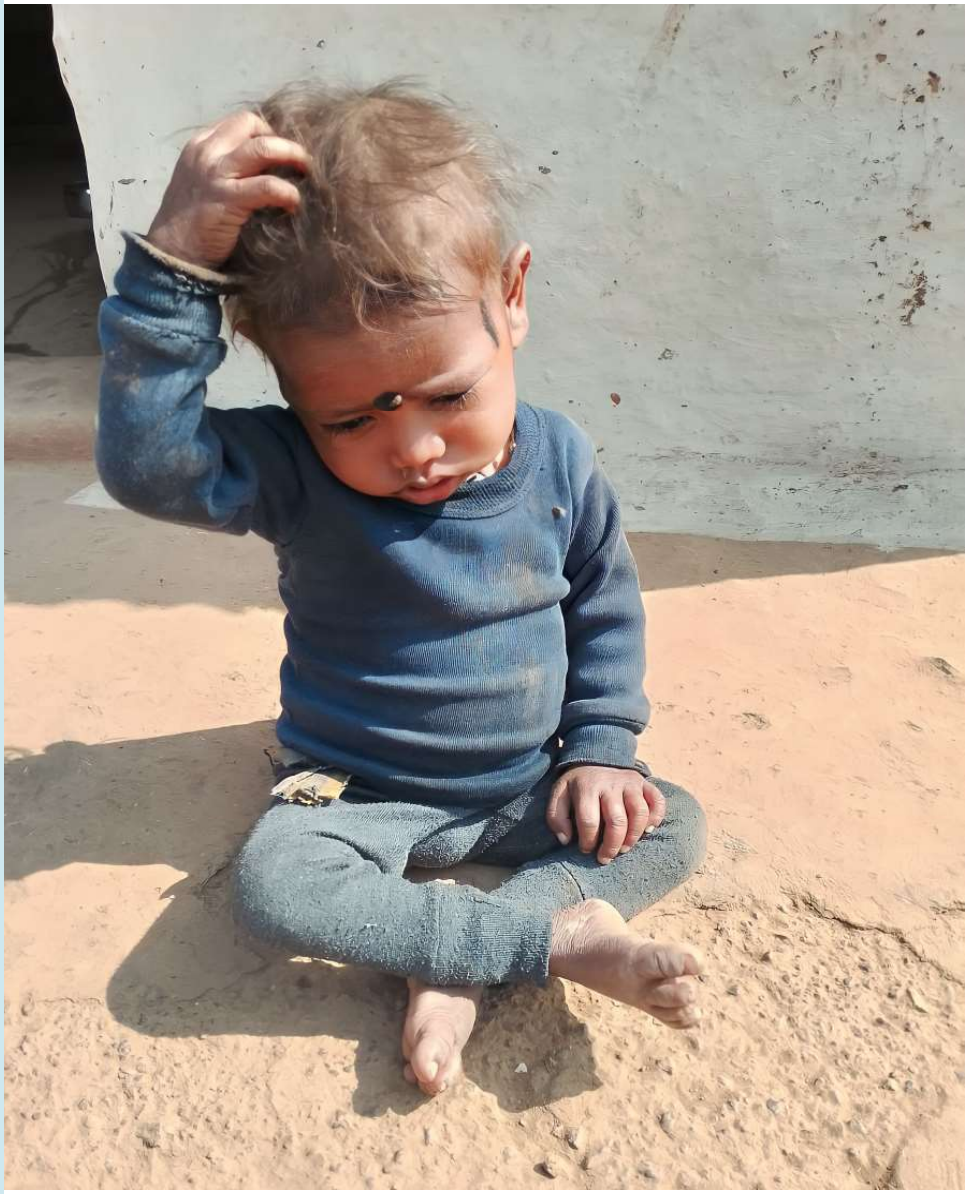

कुपोषण का उपचार है सुपोषण

शिवपुरी जिले की नोन्हेटाखुर्द पंचायत में है गांव टपरपुरा। इसी गांव के नेपाल आदिवासी के घर 25 अगस्त 2020 को उसका बेटा रामराज पैदा हुआ था। लेकिन वह महज 6 माह की उम्र में ही कुपोषण की चपेट में आ गया और स्थिति इतनी कठिन हो गई कि उसे बचाना मुश्किल लगने लगा। ऐसे में संस्था और समुदाय के लोगों की समझाइश पर जब रामराज के परिवार ने खानपान की आदतों में सुधार किया तो रामराज कुपोषण के चक्र से सफलता के साथ बाहर निकल आया। पढ़िए रामराज के सुपोषण के की कहानी...

बच्चे की मां अनीता के अनुसार टपरपुरा गांव में आंगनवाड़ी केंद्र नहीं है। इस वजह से बच्चे सेवाओं से वंचित रह जाते हैं। लोग पोषण, आहार आदि के लिए पटपरी गांव जाते हैं, जहां आंगनवाड़ी में हमारे गांव के बच्चे पहुंच ही नहीं पाते।

टपरपुरा में बाल संदर्भ सेवाओं और आंगनवाड़ी की कमी का दुष्प्रभाव कुपोषण के रूप में साफ दिखाई देता है। अनीता के घर में रामराज से बड़े 4 भाई-बहन हैं। इनमें 2 बहन और 2 भाई हैं। रामराज के पिता नेपाल का अंत्योदय अन्न योजना का राशन कार्ड बना है, जिस पर 35 किलो राशन मिलता है। उससे परिवार का खर्च चलाने में सहयोग मिलता है। उनके पास 3 बीघा जमीन भी है। परिवार एक छोटी सी झोपड़ी में रह रहा है। जाहिर है, आदिवासी समुदाय की आर्थिक स्थिति का कमजोर होना और उनके पास जीवनयापन का कोई निश्चित साधन नहीं होना एक बड़ी चुनौती है। कोविड के समय में यह स्थिति अधिक चुनौतीपूर्ण रही है, जिसका समाधान खोजने में सामाजिक संस्था विकास संवाद की अहम भूमिका रही।

कोविडकाल में घर पर प्रसव से देखरेख में कमी

रामराज का जन्म टपरपुरा गांव में घर पर ही हुआ था, इस वजह से मां अनीता को जननी सुरक्षा का लाभ भी नहीं मिल पाया। क्योंकि जिस समय अनीता का प्रसव हुआ था उस समय लॉकडाउन लगा हुआ था। अनीता को एक तरफ यह डर था कि कोरोना का असर उसके बच्चे और परिवार पर भी न हो जाए। हालांकि 3 बार अनीता के घर जाकर सीएमसी सलाहकार ने सलाह भी दी थी। इसमें संस्थागत प्रसव और मां का पहला पीला गाढ़ा दूध पिलाने की समझाइश का पालन 6 माह तक अनीता ने किया भी था, लेकिन उसके बाद ऊपरी आहार देने में कमी रही। बच्चों की उम्र में ज्यादा अंतर नहीं होने के कारण भी उनके खानपान का ध्यान ठीक से नहीं रखा जा सका।

ऐसे में, जब रामराज की हालत खराब हो गई तब एक दिन आशा कार्यकर्ता और संस्था के कार्यकर्ता ने अनीता को पोषण पुनर्वास केंद्र में भर्ती करने की सलाह दी। साथ ही काम के नुकसान के बदले वहां से मिलने वाली सहायता की जानकारी भी दी। तब रामराज को 15 अक्टूबर 2021 को पोषण पुनर्वास केंद्र (एनआरसी) में भर्ती किया गया। तब उसका वजन 3 किलो 900 ग्राम था। वह केंद्र में 11 दिन भर्ती रहा। वहां रामराज को ज्यादा आराम नहीं मिला तो खून चढाने की ज़रूरत बताई गई जो अनीता नहीं दे पाई। इस वजह से 11 दिन बाद वह रामराज को लेकर अपने घर वापस आ गई। इस बीच रामराज का वजन 200 ग्राम बढ़ा और दस्त भी बंद हो गए। वह कुछ-कुछ खाने भी लगा था।

मुर्गी पालन से मिले अंडे तो सुधरने लगी सेहत

अनीता को पशुपालन विभाग की योजना से जोड़कर 2021 में मुर्गी पालन शुरू करवाया गया। इसके तहत 45 चूजे दिए गए थे। जब में बड़े होकर मुर्गियां बन गए तब उनके परिवार को अंडे भी मिलने लगे। इस से उसकी आय तो बढ़ी ही, लेकिन साथ में ही गावं के लोग भी प्रेरित हुए। गांव के लोगों और सामुदायिक कार्यकर्ता ने बच्चों को अंडा खिलाने की सलाह दी जिसके बाद अनीता ने नियमित रूप से रामराज को अंडा खिलाना शुरू किया। इससे धीरे-धीरे उसकी सेहत में सुधार होने लगा। मार्च 2022 में उसका वजन 5 किलोग्राम हो गया। यह निश्चित ही पहले से अच्छी स्थिति थी। बच्चे के विकास के लिए पोषण बहुत ज़रूरी है लेकिन समुदाय में आर्थिक और सामाजिक चुनौतियों के में यह मुश्किल हो जाता है। ऐसी में सामाजिक नागरिक पहल अपनी भूमिका को मजबूती से निभाते हुए बाल पोषण में बेहतरी का काम कर रहे हैं।

साझी पहल से सुपोषित हुई कुंजा

कुंजा की कहानी लगभग हर दूसरे आदिवासी परिवार की बच्ची की कहानी है। दो साल की होते-होते छोटे भाई या बहन भी परिवार में आ जाते हैं और मां का पूरा ध्यान नवजात पर चला जाता है। ऐसे में कुंजा जैसी बेटियों के खाने-पीने या साफ-सफाई जैसी बुनियादी जरूरतों की उपेक्षा होती है। इसका नतीजा होता है बीमारी और कुपोषण। मचाखुर्द की कुंजा की कहानी भी बिल्कुल ऐसी ही है, लेकिन इसका अंत दूसरी बच्चियों जैसा नहीं हुआ, क्योंकि यहां संस्था के साथी मदद के लिए तैयार थे। कुंजा इस कुपोषण से चक्र से कैसे बाहर निकली, यह आगे पढ़िए...

शिवपुरी जिले के पोहरी विकासखंड के गांव मचाखुर्द में रहती है कुंजा। आदिवासी पिता भगवान सिंह और मां उषा की बेटी है कुंजा। उसकी उम्र 57 माह है। जनवरी 2022 में उसका वजन 11 किलोग्राम था, ऊंचाई 92 सेंटीमीटर थी। जाहिर है कि वह गम्भीर कुपोषित थी। इसके बाद संस्था और स्थानीय आंगनवाड़ी तथा समुदाय के साथ मिलकर की गई पोषण पहल की बदौलत मार्च महीने में उसका वजन बढ़कर 12.6 किलो हो गया।

कुंजा के परिवार में उसे मिलाकर तीन भाई-बहन हैं, जिसमें वह सबसे बड़ी है। कुंजा के पिता भगवान सिंह मजदूरी करते हैं, जबकि बच्चे छोटे होने के कारण मां उषा मजदूरी करने नहीं जा पाती। कुंजा 2 साल की भी नहीं हुई थी, कि उषा का दूसरा बच्चा हो गया। ऐसे में मां पर दोनों बच्चों की देखरेख की जिम्मेदारी आ गई। इस वजह से वह कुंजा पर अच्छे से ध्यान नहीं दे पाई।

उषा साफ-सफाई का ध्यान रखे बिना ही उसके हाथों में रोटी दे देती, जिसे वह गंदा करके खाती रहती। इस वजह से कुंजा दस्त, बुखार की चपेट में आकर कमजोर होती गई। एक साल पहले भी उसे कमजोर होने के कारण पोषण पुनर्वास केंद्र (एनआरसी) में भर्ती करवाया गया था। वहां जाकर वह ठीक हो गई थी, लेकिन बाद में खानपान और स्वच्छता पर ध्यान नहीं देने की वजह से बीमार होकर अति गंभीर कुपोषण की श्रेणी में आ गई।

विकास संवाद और परिवार के साथ से सुधरी हालत

कुंजा की मां को विकास संवाद समिति के कार्यकर्ता तथा परामर्शदाता ने घर जाकर साफ-सफाई के बारे में सलाह दी। बताया कि बच्चों को रोज नहलाया करें और खुद भी साफ-सफाई का ध्यान रखें। यह भी बताया कि बच्चों को खुले में शौच नहीं कराएं। साथ ही संस्था की पहल पर उषा को मुर्गीपालन के लिए शासन की योजना से जोड़ा गया ताकि कुंजा को अंडे और मांस के रूप में प्रोटीन मिल सके। खाने में हरी सब्जी की कमी को देखते हुए घर के पास छोटे से हिस्से में सब्जियों के बीज देकर पोषण वाटिका भी तैयार कराई गई।

न्यूट्रीमिक्स से कुंजा की सेहत में हुआ सुधार

हाल ही में कुंजा की दादी और मां को न्यूट्रीमिक्स बनाने-खिलाने का प्रशिक्षण दिया गया। इस दौरान उन्हें स्वच्छता और खानपान के प्रति जागरूक करना एक बड़ी चुनौती बनी रही। उन्हें महिला समूह और आंगनवाड़ी की बैठक में बार-बार इस बारे में समझाया गया। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और आशा कार्यकर्ता ने भी न्यूट्रीमिक्स निर्माण प्रशिक्षण के दौरान सहयोग किया और टेक होम राशन का उपयोग खाने में करवाया गया। इसके अच्छे नतीजे देखने को मिले।

कोर ग्रुप सदस्य रामदुलारी ने पूरी जिम्मेदारी से निभाई भूमिका

मचाखुर्द कोर ग्रुप की सदस्य रामदुलारी बाई आदिवासी ने कुपोषित बच्चों के घर जाकर साफ-सफाई से खिलाने में सराहनीय सहयोग किया। उन्होंने यह भी बताया कि बच्चों को कब, कितना और कैसे खिलाना है। हर 15 दिन में बच्चे का वजन करने में आंगनवाड़ी कार्यकर्ता व सामुदायिक कार्यकर्ता ने पूरा सहयोग किया। इसी कड़ी में एएनएम ने भी कुंजा के जन्म से लेकर अब तक के टीकाकरण और समय- समय पर उचित खानपान की सलाह तथा एनआरसी में भर्ती करवाने के लिए प्रेरित करने का काम किया। इस तरह बार-बार सबके समझाने और सहयोग देने का परिणाम यह हुआ कि कुंजा के स्वास्थ्य में परिवर्तन हुआ और वह अब सुपोषित हो रही है।

तमन ने कैसे जीती कुपोषण की जंग

तमन आदिवासी क्षेत्रों में फैले कुपोषण के खिलाफ जारी लड़ाई का जीता-जागता उदाहरण है। कुपोषण के चलते तमन के जिंदा बचने की बहुत कम उम्मीद रह गई थी। रही-सही कसर उसके परिजनों ने झाड़-फूंक पर ज्यादा भरोसा कर पूरी कर दी। ऐसे समय में संस्था और काउंसलर्स ने बिना समय और हिम्मत गंवाए तमन को पोषण पुनर्वास केंद्र भेजने के लिए कैसे राजी किया और कैसे तमन की जान बची, इस कहानी में पढ़िए...

राजेश आदिवासी शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक के डांगबर्वे गांव में रहते हैं। उनकी तीन संतानें हैं, बड़ा बेटा अमन सात वर्ष का और मंझला बेटा तमन दो वर्ष का है। जबकि सबसे छोटा शिशु अभी लगभग छह माह का है। अक्टूबर 2021 में कुपोषण की वजह से तमन की तबीयत इतनी खराब हो गई थी कि उसके बचने की संभावना भी बहुत कम मानी जा रही थी। इसके बावजूद उसका परिवार झाड़फूंक में लगा हुआ था। ऐसी विकट हालत में तमन ने अगर कुपोषण से जंग जीती तो इसमें परिवार द्वारा किए जा रहे मुर्गीपालन और विकास संवाद के पोषण व स्वास्थ्य संबंधी परामर्श की अहम भूमिका रही।

राजेश आदिवासी का परिवार बेहद गरीब और भूमिहीन है। अंत्योदय योजना के तहत बने राशन कार्ड पर मिलने वाले 35 किलो मासिक अनाज की मदद से उसके परिवार का गुजारा चलता है। ऐसे में डांगबर्वे और रामपुरा जैसे गांव में रहने वाले राजेश आदिवासी जैसे करीब 200 परिवारों को मुर्गीपालन योजना का लाभ दिलाने के लिए ग्राम सभा से प्रस्ताव करवाकर पशुपालन विभाग के समक्ष आवेदन किया गया। आवेदन की मंजूरी के बाद पशुपालन विभाग की ओर से हर परिवार को मुर्गीपालन के लिए कड़कनाथ प्रजाति के 48-48 चूजे दिए गए। इसके साथ ही मुर्गियों का दड़बा बनाने के लिए 1,500 रुपए नकद भी दिए गए।

राजेश के अनुसार उसे मिले 48 चूजों में से 27 मुर्गा-मुर्गी ही बचे। इस बीच 2 साल के तमन का स्वास्थ्य दिनों-दिन बिगड़ता जा रहा था। इस वजह से वह काफी कमजोर हो गया था। तब राजेश ने अपने तीन मुर्गों को 2,000 रुपए में बेचकर बेटे का इलाज शुरू किया। राजेश कहते हैं कि 'तमन की हालत बिगड़ती जा रही थी, लेकिन हमारे पास पैसे नहीं थे। ऐसे में हमने मुर्गे बेचकर बेटे का इलाज और आने-जाने का खर्च जुटाया।

कुपोषण मुक्ति की राह में है अंधविश्वास की चुनौती

सामुदायिक कार्यकर्ता रानी जाटव बताती हैं कि तमन के कुपोषित होने पर परिवार वाले किसी टोना-टोटका का प्रभाव मानकर झाड़-फूंक कराते रहे। परिजन उसे इलाज के लिए शिवपुरी ले जाने को तैयार ही नहीं थे। दरअसल इस क्षेत्र में अंधविश्वास कुपोषण मुक्ति की राह में एक बड़ी चुनौती है। सहरिया समुदाय के लोगों का मानना है कि बच्चों को कोई टोना-टोटका कर देता है, इसलिए वे खाना नहीं खाते और बीमार हो जाते हैं। इसलिए वे अपने समाज के झाड़-फूंक करने वाले लोगों से ही बच्चों का इलाज कराते हैं। इसी कड़ी में राजेश ने अपने बच्चे को एक झोलाछाप डाक्टर को दिखाया। फिर भी उसकी तबीयत बिगड़ती ही चली गई। बहुत समझाने पर भी वे उसे पोहरी पोषण पुनर्वास केंद्र ले जाने के लिए तैयार नहीं थे। जिला मुख्यालय शिवपुरी जाने को तो वे एकदम तैयार नहीं थे।

काउंसलर ने निभाई अहम भूमिका, तमन का बढ़ा वजन

जब तमन की तबियत इतनी बिगड़ गई कि उसकी जान खतरे में दिखने लगी तब काउंसलिंग एंड मॉनिटरी सेंटर (सीएमसी) सलाहकार रानी जाटव ने राजेश की पत्नी आरती की काउंसलिंग कर तमन को पोषण पुनर्वास केंद्र (न्यूट्रीशनल रिहैब सेंटर या एनआरसी) में भर्ती कराने के लिए राजी किया। आखिरकार 19 अक्टूबर 2021 को स्थानीय आंगनवाड़ी कार्यकर्ता रचना वर्मा की मदद से तमन को पोहरी स्थित एनआरसी में भर्ती कराया जा सका। तमन की हालत वहां भी नहीं सुधरी और उसे एनआरसी, शिवपुरी रेफर किया गया। जब तमन को भर्ती किया गया उस समय उसका वजन 6.4 किलो था। अस्पताल से छुट्टी के समय उसका वजन बढ़कर 7.9 किलो हो चुका था। अब तमन पूरी तरह स्वस्थ हो चुका है। इधर मुर्गी पालन से अब तमन को रोज अंडे खाने को मिलता है, जिससे उसका वजन बढ़कर 10 किलो हो चुका है। यह अच्छी बात है अंधविश्वास के चक्कर में फंसकर तमन को अपनी जान नहीं गंवानी पड़ी।

कठिन परिस्थितियों में बच्चों का जीवन

सहारिया जनजाति के आदिवासी ज्यादातर जंगलों के आसपास छोटे-छोटे टोलों या बस्तियों में रहते हैं। इस वजह से उन तक नियमित रूप से स्वास्थ्य और बच्चों से जुड़ी सेवाएं पहुंचाने में समस्या बनी रहती है। पोहरी जनपद के जंगल में बसे मड़खेड़ा गांव में 15 सहरिया परिवार रहते हैं। आंगनवाड़ी केंद्र भी करीब 6 किमी दूर है। इस वजह से दुर्गा आदिवासी जैसी गर्भवती को पहला टीकाकरण होने में करीब 6 माह लग गए, जबकि बच्चों का नियमित टीकाकरण आज भी चुनौती बना हुआ है। आगे पढ़िए कि कैसे इस दूरदराज के गांव तक स्वास्थ्य सेवाएं पहुंचने की शुरुआत हुई...

मड़खेड़ा गांव तक स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव की समस्या की ओर कोर ग्रुप के सदस्यों और विकास संवाद के कार्यकर्ताओं ने मिलकर न केवल प्रशासन का ध्यान दिलाया बल्कि दुर्गा आदिवासी को पोषण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा दिलाने में जरूरी पहल भी की, जिससे मां और बच्चे को सुरक्षित जीवन का अधिकार मिल सका।

जून 2022 में संस्था की ओर से मड़खेड़ा गांव में किए जा रहे सर्वे के दौरान बच्चों और महिलाओं की स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए गठित कोर कमेटी के सदस्यों तारा और लंपी ने बताया कि भूपेंद्र आदिवासी की पत्नी दुर्गा 3 माह से गर्भ से है, लेकिन अब तक उसे एक भी टीका नहीं लगा है। फिर 28 जून को जब संस्था की काउंसलर दुर्गा से संपर्क करने गांव पहुंची, तब वह अपने मायके जा चुकी थी। कोर ग्रुप के सदस्यों ने बताया कि मड़खेड़ा गांव में आंगनवाड़ी नहीं होने और जंगल क्षेत्र के कारण आंगनवाड़ी व स्वास्थ्य कार्यकर्ता गांव में नहीं पहुंच पाते हैं। इस वजह से बच्चों और महिलाओं का समय पर टीकाकरण नहीं हो रहा है। यहां से नजदीकी आंगनवाड़ी केंद्र ग्राम अहेरा में है जो मड़खेडा से 6 किलोमीटर दूर है। काउंसलर रानी जाटव ने यह सब बातें अपने परियोजना समन्वयक को बताईं, जिन्होंने ब्लॉक मेडिकल ऑफिसर और महिला एवं बाल विकास विभाग के परियोजना समन्वयक को इस बारे में बताया।

28 सितंबर 2022 को परामर्शदाता रानी जाटव ने दुबारा मड़खेड़ा गांव जाकर दुर्गा के बारे में पूछा। कोर ग्रुप की सदस्य और वर्तमान सरपंच विद्या आदिवासी ने बताया कि दुर्गा बाजरा काटने खेत पर गई है। इसके बाद एक बच्चे को भेजकर दुर्गा को स्वास्थ्य जांच के लिए परामर्श केंद्र पोहरी आने की सूचना दी गई। 18 अक्टूबर को दुर्गा आदिवासी अपने पति के साथ पोहरी पहुंची। वहां संस्था के कार्यकर्ता उसे सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी ले गए और पहली बार उसकी जांच की गई। इसमें उसका वजन 42 किलो, ऊंचाई 145.5 सेमी और हीमोग्लोबिन 9 रहा। अस्पताल में टीकाकरण नहीं होने के कारण फिर से ब्लॉक मेडिकल ऑफिसर से मिलकर दुर्गा के 6 माह से टीकाकरण नहीं होने और फील्ड में एएनएम के नहीं पहुंचने की समस्या बताई गई। इसके बाद अधिकारी के कहने पर नजदीकी केंद्र सोनीपुरा ले जाकर पहला टीका लगवाया गया। साथ ही जाखनौद उप स्वास्थ्य केंद्र की एएनएम संतोषी चौहान ने दुर्गा को आयरन विटामिन की गोली दी और टीकाकरण कार्ड बनाकर दिया। साथ ही प्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना का आवेदन पत्र भी भरा गया।

कोर ग्रुप सदस्यों की मांग, गांव में हो नियमित टीकाकरण

इस घटना के बाद मड़खेड़ा गांव के कोर ग्रुप सदस्यों ने सरपंच विद्या के साथ मिलकर गांव में नियमित टीकाकरण कराने की मांग की। स्वास्थ्य विभाग की ओर से 24 नवंबर को मड़खेड़ा गांव आकर दुर्गा आदिवासी को दूसरा टीका लगाया गया। इससे दुर्गा का संस्था के कार्यकर्ताओं के प्रति भरोसा बढ़ा। इसलिए हल्का पेट दर्द शुरू होने पर दुर्गा 16 दिसंबर को सीधे पोहरी परामर्श केंद्र पहुंची। वहां से स्वास्थ्य केंद्र ले जाकर उसकी जांच की गई। यही नहीं, दुर्गा की सास को कार्यकर्ता ने कोई इमरजेंसी होने पर 108 एंबुलेंस को बुलाने का तरीका समझाकर घर भेज दिया। महज दो दिन बाद ही रात 10 बजे प्रसव का दर्द उठने पर परिवार वाले उसे एंबुलेंस से सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी लेकर पहुंचे। 19 दिसंबर की सुबह 5 बजे ढाई किलो वजन वाले स्वस्थ शिशु का सुरक्षित जन्म हुआ। फिलहाल समुदाय द्वारा मड़खेड़ा में बच्चों व महिलाओं के नियमित टीकाकरण किए जाने की मांग लगातार उठाई जा रही है। इसी बीच दुर्गा आदिवासी जैसे सहरिया समुदाय को पोषण वाटिका व मुर्गी पालन से जोड़ा गया है जिससे उन्हें पोषण सुरक्षा मिल रही है।

पोषण एवं आजीविका प्रबंधन की कहानी

मुर्गीपालन यानी आजीविका और पोषण साथ-साथ

मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले में सहरिया आदिवासी परिवारों के लिए खाद्य एवं पोषण सुरक्षा बड़ी चुनौतियां रही हैं। इसका दुष्प्रभाव बच्चों में होने वाले कुपोषण और महिलाओं में एनीमिया के रूप में नजर आता है। ऐसे में मचाखुर्द गांव की दुलारी आदिवासी यहां के अन्य आदिवासियों के लिए प्रेरणा का बड़ा स्रोत बन गई हैं। दुलारी ने मुर्गीपालन अपनाकर सहरिया समुदाय में महिलाओं की आय बढ़ाने और कुपोषण घटाने की दिशा में अनुकरणीय पहल की है। पढ़िए, आखिर यह कैसे संभव हुआ...

50 साल की दुलारी आदिवासी शिवपुरी जिले के पोहरी जनपद के ग्राम मचाखुर्द में रहने वाली एक आम महिला है। वह पिछले कई साल से संस्था द्वारा गांव में बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण सुरक्षा निगरानी व सहयोग के लिए बने कोर ग्रुप की सदस्य है। मचाखुर्द गांव में एक कच्ची झोपड़ी में रहने वाली दुलारी के लिए पति की मृत्यु के बाद 4 बच्चों का पालन-पोषण बड़ी चुनौती बन गया था। इनके पास 4 बीघा पथरीली जमीन है। पति के रहते इस पर कुछ उगा भी लेते थे, लेकिन अब दुलारी के लिए अकेले खेती करना मुश्किल हो गया था। अब अंत्योदय अन्न योजना से हर महीने मिलने वाला 35 किलो राशन ही परिवार के जीने-खाने का मुख्य ज़रिया है। दुलारी बताती हैं कि इस राशन से सिर्फ खाद्यान्न ही मिलता था जबकि तेल, सब्जी, मसाला जैसे चीजों के लिए पैसे की कमी बनी रहती थी। ऐसे में वह सोचती थी कि घर से हो सकने वाला रोजगार मिल जाए तो अच्छा रहता।

कोर ग्रुप बैठक में मिली पोल्ट्री फ़ार्मिंग की जानकारी

दुलारी बताती हैं कि हमारे गांव में हर माह की तरह ही एक बार कोर ग्रुप की बैठक थी। इसमें महिलाओं ने गांव में कमजोर खेती-किसानी और रोजगार की कमी की समस्या बताकर किसी योजना से आर्थिक सहायता दिलाने की मांग रखी। इसी बीच संस्था की सामुदायिक कार्यकर्ता ज्योति वर्मा ने बैकयार्ड मुर्गी पालन में रुचि दिखाने वाली महिलाओं को आजीविका मिशन द्वारा चलाई जा रही पोल्ट्री फ़ार्मिंग योजना के बारे में बताया। इसके बाद महीने भर के अंदर ही 22 महिलाओं ने अपना समूह आजीविका मिशन में पंजीकरण करवाते हुए मुर्गीपालन के लिए आवेदन जमा कर दिया।

22 परिवारों के लिए मुर्गीपालन बना जीने का ज़रिया

राज्य आजीविका मिशन ने बैकयार्ड मुर्गी पालन करने वाली महिलाओं के प्रस्ताव पर मंजूरी दे दी। इसके बाद मचाखुर्द गांव में 22 पोल्ट्री फार्म यूनिट बनाने के आदेश भी जारी किए गए। इसके लिए महिलाओं के खाते में प्रति यूनिट दो लाख रुपए की राशि जमा की गई। इस तरह जल्द ही पूरे गांव में महिलाओं की अगुवाई में पोल्ट्री फार्म शेड बनकर तैयार हो गए, जिसके बाद पशुपालन विभाग जिला शिवपुरी ने इन पोल्ट्री फार्म में 500 चूजे प्रति यूनिट दिए। सभी हितग्राहियों को विभाग और संस्था के समन्वय से मुर्गी पालन पर प्रशिक्षण भी दिया गया।

सहरिया महिलाओं की प्रेरणा बनी दुलारी आदिवासी

इन दिनों दुलारी आदिवासी अपने पोल्ट्री फार्म में ब्रायलर प्रजाति के 500 चूजे पाल रही हैं। वे अब अपने गांव में सहरिया समुदाय की महिलाओं के लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुई है। दुलारी से प्रेरित होकर मचाखुर्द गांव की 22 आदिवासी महिलाएं भी मुर्गीपालन अपना चुकी हैं। वे बताती हैं कि कोविड के समय हमने घरेलू मुर्गियां पाली थीं, जिससे बच्चों की सेहत में काफी सुधार आया, लेकिन कभी एक साथ इतना बड़ा रोजगार नहीं किया था। अब शेड बन जाने से चूजों की अच्छी सुरक्षा हो रही है। वहीं साफ-सफाई रखने और समय पर दाना देने से ये चूजे एक महीने में ही एक से सवा किलो वजन के हो जाते हैं। फिर बड़े होने पर हम इसे आजीविका मिशन से जुड़ी कंपनी को दे देते हैं। जिसके बदले में एक बार में 5000 रुपयों तक की आय हो जाती है।

बढ़ रही महिलाओं की आय, कम हो रहा है कुपोषण

मचाखुर्द गांव की महिलाओं के प्रयास से फरवरी 2022 में विधिवत रूप से पोल्ट्री फार्म व्यवसाय की शुरूआत हुई। इस व्यवसाय से जुड़ी दुलारी, परबो और कुसुम आदिवासी के अनुसार दिसंबर 2022 तक उनकी जैसी सभी 22 महिलाएं 3 बार मुर्गे कंपनी को दे चुके हैं। इससे उन्हें 3 लाख 30 हजार रुपए की आय हुई है। कुसुम आदिवासी ने अपनी आय का बड़ा हिस्सा अपनी दो वर्ष की अति कुपोषित बच्ची के इलाज और खानपान में खर्च किया है। वहीं, दुलारी और अन्य महिलाओं ने खेती के बीज और खाद खरीदने तथा परिवार के भोजन जुटाने में अपनी आय लगाई है। इस तरह मुर्गीपालन सहरिया परिवार की खाद्य सुरक्षा में सहायक साबित हुआ है। इससे महिलाओं और बच्चों की सेहत में भी सुधार हो रहा है। मचाखुर्द की सामुदायिक कार्यकर्ता ज्योति वर्मा के अनुसार 130 परिवार वाले इस गांव में वर्ष 2016-17 में 56.8% बच्चे कुपोषण का शिकार थे, वहीं अब दुलारी आदिवासी जैसी महिलाओं के सार्थक प्रयास से इसमें 27% की कमी दर्ज हुई है।

मुर्गीपालन और पोषण वाटिका ने रोका पलायन

शिवपुरी के आदिवासी परिवारों को रोजगार और कमाई के साधन न मिलने की वजह से अक्सर पलायन करना पड़ता है, लेकिन हालत तब ज्यादा बिगड़ती है जब परदेश में भी उन्हें काम नहीं मिलता, वहीं घर में जरूरत की वजह से वापस लौटना पड़ता है। ऐसे में उनकी मदद के लिए तारणहार बना मुर्गीपालन और किचन गार्डन का नया प्रयोग। आगे पढ़ते हैं कि यह पहल किस तरह आदिवासी परिवारों को संकट से उबरने में मदद कर रही है...

शिवपुरी जिले के मचाखुर्द गांव में रहने वाले सतीश और फुलवा आदिवासी को गरीबी और बेरोजगारी के कारण काम की तलाश में अप्रैल 2021 में बारां, राजस्थान जाना पड़ा। तब फुलवा 6 माह की गर्भवती थी। नियमित काम न मिलने के कारण उन्हें वापस गांव लौटना पड़ा। इसके बाद जून माह में फुलवा का प्रसव हुआ। जरूरत के ऐसे समय में मुर्गीपालन और किचन गार्डन से इस परिवार को पोषण एवं आजीविका सुरक्षा मिली।

छह जून 2021 को फुलवा का प्रसव घर पर ही हुआ। तब बच्चे का वजन 3 किलो था। उसके परिवार वाले कुछ ही दिन पहले फुलवा के साथ बारां से लौटे थे, कोरोना के चलते उन्हें ठीक से काम नहीं मिल पाया था। उन्हें यह भी डर थ कि कोरोना के कारण अस्पताल में सुविधा मिल पाएगी या नहीं। इसी उहापोह में वे अस्पताल भी नहीं गए। फुलवा बताती है, 'मैं छह माह का गर्भ लेकर पति के साथ काम की तलाश में बाहर गई थी। वहां काम नहीं मिला तो हम गांव लौट आए। यहां देखा कि मेरी सास (दुलारी आदिवासी) ने हमारी मुर्गियों और किचन गार्डन को संभाल रखा है। तब हमें जरूरत के समय में खाने के लिए मांस, अंडा और सब्जियों की भरपूर खुराक मिल सकी। इससे मैं और मेरा बच्चा पूरी तरह से स्वस्थ हो सके। सतीश के अनुसार रोजगार नहीं होने से हमारी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। तब अगर अम्मा के पास मुर्गी पालन और किचन गार्डन नहीं हुआ होता तो हम ये चीजें शायद नहीं खा पाते। क्योंकि इनकी बाजार कीमत चुकाना हमारे बस की बात नहीं थी। इसलिए अब हमें इसका महत्व समझ आ रहा है।

विकास संवाद के जिला समन्वयक अजय यादव बताते हैं, 'सहरिया समुदाय के लोगों को मुर्गी पालन के लिए तैयार करना कठिन काम रहा है। इन्होंने कभी मुर्गीपालन नहीं किया था। फिर भी हमने बच्चों में होने वाले कुपोषण और महिलाओं की एनीमिया को देखते हुए इन्हें पशुपालन विभाग की योजना से जोड़कर 2018 से 2021 तक लगातार मुर्गीपालन कराया। साथ ही सब्जी के बीज देकर किचन गार्डन भी तैयार कराया। इससे दुलारी जैसे जरूरतमंद सहरिया परिवार को पोषण और आर्थिक सुरक्षा मिलने लगी।

इससे पहले यह समुदाय केवल मजदूरी पर निर्भर था। लेकिन मजदूरी का काम स्थाई नहीं होने और काम न मिलने पर समुदाय को खाने के भी लाले पड़ जाते थे। इस स्थिति का दुष्प्रभाव मचाखुर्द गांव से जुड़े बाल कुपोषण और महिलाओं की एनीमिया के मामलों में देखा जा रहा था। वर्ष 2018 में मचाखुर्द गांव में किए गए वृद्धि आंकलन में 10 बच्चे अति कम वजन के मिले। वहीं खाद्य असुरक्षा के कारण महिलाओं में एनीमिया की भी चुनौती रही है। लेकिन पिछले 4 वर्ष से संस्था द्वारा चलाए जा रहे कुपोषण के सामुदायिक प्रबंधन कार्यक्रम का नतीजा है कि इस गांव में कुपोषण और एनीमिया के मामलों में 50% तक की कमी आई है।

फुलवा को मिली पोषण सुरक्षा, परिवार की बढ़ गई आय

मजदूरी करके जीविका चलाने वाले सतीश और फुलवा के परिवार को पशुपालन विभाग के मुर्गीपालन योजना से वर्ष 2021 में दो बार 45-45 चूजे दिए गए। इससे तैयार मुर्गे-मुर्गियां व अंडे इस परिवार के खाने और बेचकर अपनी आय बढ़ाने के काम आ रहे हैं। इसी के साथ लगभग 250 वर्गफिट में किचन गार्डन तैयार कराया गया है। इससे फुलवा के परिवार को 8 से 10 हजार रुपए की वार्षिक आय होने लगी है। इस तरह सामुदायिक पहल से सहरिया परिवारों की पोषण सुरक्षा मजबूत हो रही है।

कुकड़ूं कूं... से दूर हुआ सहरिया समुदाय का कुपोषण

शिवपुरी जिले की आबादी में सहरिया की हिस्सेदारी 11.27% है। ये आदिवासी छोटी-छोटी बसाहटों में रहते हैं। आर्थिक स्थिति बेहतर नहीं है, इसका असर साफतौर पर उनके पोषण पर दिखाई देता है। सहरिया के पास कृषि भूमि कम रही है। वे जंगलों से जड़ी-बूटी एकत्रित कर उसे बेचकर आजीविका चलाते रहे हैं, लेकिन जंगलों के कम होने का असर उनके इस काम पर भी पड़ा है। ऐसे में, अब ज्यादातर परिवार या तो मजदूरी करते हैं या या भवन निर्माण में, पत्थर खदानों में काम करने पर विवश हैं। ऐसे में इनके कुपोषण को दूर करने में मुर्गीपालन किस तरह सहायक साबित हुआ, इस बारे में आगे पढ़िए...

सहरिया

आदिवासियों को स्थानीय स्तर पर काम नहीं मिलता तो ये पलायन करते हैं। ऐसे में उनका पोषण बुरी तरह प्रभावित होता है। गरीबी के चलते संतुलित और पोषक आहार सपने के समान है। ये समुदाय पोषण के लिए पूरी तरह सरकारी खाद्यान्न पर निर्भर हैं। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 के अनुसार सहरिया समुदाय में पांच वर्ष तक की उम्र के 49.6% बच्चे कुपोषित हैं, जो औसत कुपोषण से अधिक है। इस समुदाय के 35 वयस्कों में अल्पपोषण है, जबकि 15 से 49 वर्ष उम्र की महिलाओं में 48.7% एनीमिया की शिकार हैं। इसका असर यहां के बच्चों की अधिक मृत्यु दर के रूप में सामने आता रहा है।

इन हालात में विकास संवाद ने वर्ष 2017 में पोहरी विकासखंड के 15 गांवों में समुदाय आधारित कुपोषण प्रबंधन परियोजना की शुरुआत की। मकसद था समुदाय में कुपोषण और अल्पपोषण की स्थिति को समन्वित प्रयासों से बेहतर बनाना। इसके लिए एक ओर समुदाय को सशक्त करना जरूरी था वहीं दूसरी ओर उनको हर तरह से सहयोग भी देना था। इसके लिए एक ऐसी सोच का विकास करना जरूरी था जहां एक लक्ष्य को लेकर सरकार की विभिन्न योजनाओं का संविलियन भी हो सके। ताकि बेहतर और टिकाऊ परिणाम जल्द सामने आ सकें। इसके लिए किचन गार्डन लगाना, समुदाय में पानी के स्रोतों को पुनर्जीवित करना, परंपरागत खाद्य व्यवस्थाओं को मजबूत करना, स्वच्छता व्यवहार, सरकारी योजनाओं का अधिकतम लाभ पाना, आंगनवाड़ी, स्कूलों को बेहतर बनाना आदि की रणनीति बनाई गई।

एक विचार आया कि क्यों न मुर्गीपालन को समुदाय में पुनः स्थापित किया जाए। सहरिया आदिवासी परिवारों में मुर्गीपालन होता रहा है, इससे उन्हें पहले पोषण भी मिल जाता था और आजीविका का सहारा भी था। पर कई वजहों से वह या तो कम हो गया, या लगभग खत्म ही हो गया। पर यह हो कैसे? इसके लिए पशुपालन विभाग के साथ तालमेल किया गया। सहरिया समुदाय के लोगों को कड़कनाथ प्रजाति के मुर्गीपालन के लिए प्रशिक्षित किया गया। पशुपालन विभाग के साथ मिलकर वर्ष 2017-18 में 44 परिवारों को मुर्गीपालन करवाया गया। प्रत्येक परिवार

को 45 चूजे दिए गए तथा मुर्गी का दड़बा बनाने के लिए भी 1200 रुपए दिए गए। कुल 1980 चूजे तथा 52,800 रुपए दिए। साल 2020 में 50 परिवारों को कड़कनाथ प्रजाति के 1000 चूजे वितरित किए गए। इस पहल का यहां इतना अच्छा नतीजा रहा कि अब ब्लॉक के 15 गांवों के 874 परिवार मुर्गीपालन कर रहे हैं। जाखनौद, सोनीपुरा, रामपुरा, जटवारा, मेहरा, डांगवर्वे, आमई, पटपरी, नोन्हेटा खुर्द, मचाखुर्द, बटकाखेड़ी, ग्वालीपुरा, टपरपुरा, माधोपुरा और मड़खेड़ा के निवासियों के लिए मुर्गीपालन एक सहारा बन गया है।

कैसे बदला मचाखुर्द

मचाखुर्द वह गांव है जहां मुर्गीपालन का असर बहुत साफ़ दिखाई देता है। यहां सहरिया समुदाय के 68 और हरिजन समुदाय के 41 परिवार रहते हैं। सहरिया समुदाय में प्रति परिवार बमुश्किल दो से तीन बीघा जमीन है और वह भी पथरीली। यहां केवल एक फसल होती है और वह भी मानसून पर निर्भर है। दो आंगनवाड़ी में 89 बच्चे पंजीकृत हैं। एक प्राथमिक पाठशाला भी है। उप स्वास्थ्य केंद्र छह किमी दूर देवरीखुर्द में है। संस्था ने मचाखुर्द में किचन गार्डन तैयार करने और तालाब गहरा करने का काम तो किया ही, साथ ही सुरक्षित मातृत्व और ग्रामीण स्वास्थ्य, स्वास्थ्य एवं पोषण समितियों के काम की निगरानी तथा क्षमता वृद्धि का काम भी किया जा रहा है।

इस गांव में लोगों ने मुर्गीपालन शुरू किया। कुछ ही महीनों में मुर्गियों ने अंडे देना शुरू कर दिया। इस तरह लोगों के भोजन में अंडा भी शामिल हो गया, जल्द ही बाहर से लोग मुर्गा खरीदने पोहरी आने लगे। हालांकि मुर्गे तभी बेचे जाते जब कोई विशेष जरूरत होती। जैसे किसी बीमारी की वजह से या किसी अन्य जरूरत के वक्त। इस तरह समुदाय कर्ज जैसी समस्या से भी बच रहा था। कड़कनाथ प्रजाति के एक अंडे का मूल्य 10 रुपए है, जबकि एक मुर्गा 500 से 600 रुपए में बिकता है।

गांव की सुमित्रा, दुलारी, हक्के आदिवासी, हक्को और रमेश ने बताया कि पहले हम अच्छा खाना 3-4 माह में खाते थे, पर अब हमारा खाना पहले से बेहतर है। सप्ताह में सब्जी 3 बार, दाल 2 बार और हरी पत्तेदार सब्जी सप्ताह में एक बार खा लेते हैं। मुर्गा और अंडा एक माह में तीन से चार बार बन जाता है। बच्चे सप्ताह में लगभग दो से तीन दिन अंडे खा रहे हैं। वर्ष 2017 में जिस समय यहां समुदाय आधारित कुपोषण प्रबंधन परियोजना शुरू की थी, उस समय 89 बच्चों में से 15 अतिगंभीर कुपोषित थे, जबकि 46 बच्चों का वजन सामान्य से कम था। आंगनवाड़ी के रिकॉर्ड के अनुसार अब कम वजन वाले बच्चे केवल 6.25% हैं, जबकि माध्यम श्रेणी में 38.3% बच्चे हैं।

नैनी की कहानी : बेहतर स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता

नैनी आदिवासी भी उन लोगों में शामिल है, जिन्हें चूजे दिए गए थे। नैनी की बेटी वंदना अप्रैल 2018 में गंभीर कुपोषित थी। 19 माह की उम्र में उसका वजन केवल 7 किलो 100 ग्राम था। पोषण पुनर्वास केंद्र में इलाज के बाद जब वह घर वापस आई तो उसे रोज एक अंडा खिलाना शुरू किया गया। धीरे-धीरे वंदना का वजन बढ़ने लगा और कुछ ही महीनों में उसकी स्थिति सामान्य हो गई। दूसरी बेटी संजना की तबियत बिगड़ने पर उसने 1000 रुपए में दो मुर्गी बेचकर उसका इलाज कराया।

इसी गांव की तुलसा आदिवासी ने 1100 रुपए के अंडे बेचे। उनकी बेटी नीलम भी अति कुपोषित थी। मुर्गीपालन से पैसे भी आए और बच्ची का कुपोषण भी दूर हुआ। नीलम की मां ने उसे दो माह तक अंडे खिलाए और वह धीरे-धीरे स्वस्थ हो गई। मचाखुर्द की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता कहती हैं कि हमारे गांव में कई बदलाव देखने को मिले हैं, सभी परिवारों को मुर्गीपालन करवाया गया जिससे भोजन में अंडा और मांस शामिल हुआ है। किचन गार्डन लगवाए गए हैं, जिससे हरी सब्जी खाने को मिलती है, तालाब का गहरीकरण करवाए जाने से कुछ परिवारों की जमीन पर फसल भी होने लगी है। इन सब का असर साफ़ दिखाई देता है। इससे कुपोषण में कमी आई है।

सामुदायिक जल प्रबंधन की कहानी

जल संरचना से खाद्य सुरक्षा का संरक्षण

शिवपुरी जिले के पोहरी विकास खंड में बसा है सहरिया जनजाति बाहुल्य गांव मचाखुर्द। गांव के 60 आदिवासी परिवारों में से ज्यादातर मजदूरी कर परिवार का भरण पोषण करते थे। कुछ परिवारों के पास थोड़ी-बहुत जमीन थी, लेकिन सिंचाई सुविधा के अभाव में वे भी खेती नहीं कर पाते थे। इन हालात में आदिवासी परिवारों की भागीदारी से गांव के सूख चुके तालाब को गहरा किया गया। इससे ग्रामीणों को जहां रोजगार मिला, वहीं जल संकट की समस्या से भी राहत और खेती करने में मदद मिली है। सामुदायिक जल प्रबंधन से जहां गांव का सूखा तालाब पुनर्जीवित हो गया है। इस पहल की शुरुआत और इसके अंजाम तक पहुंचने की कहानी पढ़िए...

10
जरूरतमंद परिवार के सदस्यों को कुल 35 मानव दिवस का रोजगार मिला।

50
पौधे लगाए गए हैं तालाब की मेड़ पर। इनकी फेंसिंग के साथ ही पानी देने की व्यवस्था और सुरक्षा स्थानीय समुदाय के सहयोग से की जा रही है।

ग्राम मचाखुर्द में में 300 फीट चौड़ा और 700 फीट लंबा एक तालाब था। लंबे समय से सफाई न होने से तालाब में कचरा व मिट्टी भर गई थी। इससे इसमें पानी बहुत कम ठहरता था। मई 2022 की गर्मी में जब गांव में एक बार फिर सूखे की स्थिति बनी, तब ग्रामीणों ने तालाब के जीर्णोद्धार की मांग की। संस्था ने जल प्रबंधन में समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए तालाब के गहरीकरण का कार्य पूरा कराया। इस सामुदायिक पहल से मचाखुर्द का सूखा तालाब पानीदार हो उठा। इससे यहां के ग्रामीणों को खेती के लिए सिंचाई, निस्तार सुविधा और पशुओं के लिए पेयजल की उपलब्धता भी बढ़ गई है।

सहरिया समुदाय की खेती व पलायन की स्थिति

मचाखुर्द गांव के 90% परिवार साल में तीन बार शिवपुरी और आसपास के शहरों में पलायन करते हैं। क्योंकि गांव में खेती या कोई दूसरा आजीविका का स्रोत नहीं है। वे शहरों में मजदूरी करके ठंड और बरसात के दिनों में अपने घर लौट आते हैं। वे अपनी दो से ढाई बीघा पथरीली और बंजर जमीन पर खेती-मजदूरी कर जीवन-यापन की पुरजोर कोशिश करते हैं। पलायन, सिंचाई की दिक्कत और रोजगार की अनियमितता का ही परिणाम है कि गांव में बच्चों में होने वाले कुपोषण और महिलाओं में एनीमिया की स्थिति गंभीर बनी हुई है। इस स्थिति से निपटने के लिए संस्था की ओर से स्थानीय समुदाय और प्रशासन के साथ मिलकर प्रयास किए जा रहे हैं।

तालाब गहरीकरण की जरूरत और जन सहभागिता

सूखे की स्थिति को देखते हुए महिलाओं और युवाओं ने सूखे तालाब को गहरा करने की योजना बनाई। ग्रामीणों ने कहा कि मचाखुर्द तालाब में पानी ठहरने से जायद व रबी सीजन में भी सब्जी और नमी वाली फसलें ली जा सकेंगी। पशुओं के पीने के लिए पानी की उपलब्धता और इससे लगे कुएं में जल स्तर बढ़ने की संभावना को देखते हुए सामाजिक संघ के आर्थिक सहयोग से तालाब को गहरा और मजबूत किया गया। तेज गर्मी होने और बारिश की आशंका को देखते हुए इस काम में मशीन और मानवश्रम दोनों के बीच अच्छा संतुलन बैठाया गया। पथरीली भूमि पर गहरीकरण मशीन से किया गया जबकि पार (मेड़) पर पत्थर की पिचिंग मजदूरों ने की। अभी पानी से भरे इस तालाब की मेड़ पर 112 फल और छायादार पौधे समुदाय की भागीदारी से रोपे गए हैं। जाली लगाकर इनकी सुरक्षा की व्यवस्था भी की गई है। इसकी देखरेख और प्रबंधन की पूरी जवाबदेही कम्यूनिटी एक्शन ग्रुप के सदस्यों ने ली हुई है।

पानीदार हुआ सूखा तालाब, कुओं, हैंड पंप का जल स्तर बढ़ा

मचाखुर्द की रामदुलारी आदिवासी कहती हैं कि तालाब की सफाई और गहरीकरण होने से इस साल खूब पानी भरा है। इससे गांव वालों को अपने और जानवरों के निस्तार के लिए पानी मिल रहा है। इस तालाब में पानी भरे होने से तालाब के निचले हिस्से में स्थित कुओं और हैंड पम्पों में जल स्तर बढ़ रहा है। पहले महिलाओं और बच्चों को नहाने-धोने के लिए गांव से 1 किलोमीटर दूर जाना पड़ता था। पर अब, इसकी जरूरत नहीं पड़ती। गांव के 15 परिवारों की तालाब से लगी हुई 30 से 40 बीघा भूमि है। तालाब में पानी भरने के बाद अब इस जमीन पर खेती की योजना तैयार हो रही है।

जल प्रबंधन से मिला स्थानीय रोजगार

मचाखुर्द गांव के रमेश आदिवासी के अनुसार जल प्रबंधन के इस काम से कुपोषण में भी कमी होगी। क्योंकि समुदाय जब पलायन पर जाता है तो बच्चों को भी साथ में लेकर जाता है। वहां मजदूरी करते समय वे ठीक से अपने बच्चों की देखभाल नहीं कर पाते। इन परिवारों के लिए मजदूरी छोड़कर अस्पताल में भर्ती होने का मतलब है, कुछ दिन की मजदूरी का नुकसान होना। इसलिए इनके छोटे बच्चे इसी तरह कमजोर होकर कुपोषित हो जाते हैं, लेकिन अब तालाब गहरीकरण के दौरान गांव के 10 जरूरतमंद परिवार के सदस्यों को कुल 35 मानव दिवस का रोजगार मिला। इससे उनको जो मजदूरी मिली, उससे वे अपने बच्चों को पौष्टिक भोजन खिलाकर उन्हें कुपोषण से बचा पाएंगे।

60 परिवार रहते हैं मचाखुर्द और टपरपुरा दोनों गांवों में सहरिया आदिवासी समुदाय

गहरे हुए तालाब तो रुका पलायन, बदल गई जिंदगी

शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक के मचाखुर्द और टपरपुरा गांवों में सामुदायिक पहल के माध्यम से तालाबों का गहरीकरण किया गया। तालाब में पानी भरने का फायदा यह हुआ कि पहले आजीविका के लिए पलायन करने वाले ग्रामीण अब अपने गांवों में रह रहे हैं और खेती कर रहे हैं। पलायन रोकने वाली इस पहल से पहले इन गांवों की कहानी भी दूसरे गांवों जैसी ही पलायन और बेरोजगारी वाली ही थी।

कोरोना महामारी के बाद दुनिया भर में असमानता की खाई और चौड़ी हुई है। इसने खासतौर पर समाज के वंचित और गरीब तबके को ज्यादा परेशानी में डाला है। विभिन्न सर्वेक्षणों से यह साबित हो चुका है कि बहुत बड़े पैमाने पर लोगों के रोजगार छिन गए और उन्हें खाने तक के लाले पड़ गए। शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक के मचाखुर्द और टपरपुरा गांवों की कहानी भी कुछ ऐसी ही थी।

मचाखुर्द और टपरपुरा दोनों गांवों में सहरिया आदिवासी समुदाय के करीब 60-60 परिवार रहते हैं। एक परिवार मजदूरी कर अपने सदस्यों का भरण पोषण करते थे। इनमें से कुछ के पास जमीन तो थी, लेकिन सिंचाई की पर्याप्त सुविधा नहीं थी। टपरपुरा में 200 फीट चौड़ा, 600 फीट लंबा और मचाखुर्द में 300 फीट चौड़ा, 700 फीट लंबाई वाला तालाब मौजूद था। लंबे समय से साफ न होने की वजह से इन तालाबों में गाद भर गई थी और पानी बहुत कम ठहरता था। इस बीच कोरोना महामारी ने दस्तक दी और आर्थिक गतिविधियां बुरी तरह प्रभावित हुईं। इन दोनों गांवों के लोगों के कामकाज भी पूरी तरह ठप पड़ गए। ऐसे में इन परिवारों के सामने आजीविका का संकट आ खड़ा हुआ। रोजगार के बढ़ते संकट को देखते हुए संस्था की पहल पर गांव वालों की बैठकें की गईं, ताकि रोजगार पर चर्चा की जा सके। इनमें समुदाय की लगभग 30 महिलाओं और 45 पुरुषों ने हिस्सा लिया। लोगों ने इस समस्या से निपटने के तरीकों पर काफी विस्तार से अपनी-अपनी राय रखी।

तालाब गहरीकरण पर बनी सबकी सहमति

बैठक में इस बात पर आम सहमति बनी कि गांव के तालाब जिनमें गाद भर जाने के कारण पानी बहुत कम रुक रहा था, उनका गहरीकरण किया जाए। सभी ने माना कि तालाबों में पानी ठहरेगा तो खेती में मदद मिलेगी, पशुओं को भी पानी मिलेगा और पीने के पानी की भी कमी नहीं होगी। संस्था की पहल पर दिल्ली के संगठन गूंज के साथ मिलकर दोनों तालाबों को गहरा करने का काम शुरू किया गया।

हाथ से मिले हाथ और आपसी सहयोग से बन गई बात

तालाबों को गहरा करने में दोनों गांवों के सभी समुदायों के लोगों ने भरपूर सहयोग किया। टपरपुरा गांव के 93 परिवारों और मचाखुर्द के 53 परिवारों ने गहरीकरण के काम में मदद की। यह काम 8 से 10 दिनों तक चला। विकास संवाद के जिला समन्वयक अजय यादव बताते हैं, 'टपरपुरा में जमीन में पत्थर निकल आने से ज्यादा गहरीकरण नहीं हो पाया। उधर, मचाखुर्द में भी कुछ हिस्से में पथरीली जमीन होने के कारण मजदूरों को खुदाई में परेशानी आई। लेकिन सामूहिक हिम्मत से यह काम पूरा किया जा सका।' इस दौरान गांव के लोगों ने आटा, चावल,

दाल, तेल, मूंगफली आदि के रूप में आपसी सहयोग किया ताकि परिवारों को खाने-पीने की कोई कमी न होने पाए। राशन की दुकान से मिलने वाले राशन ने भी मदद की। कुछ लोगों ने जंगलों से जड़ी-बूटी लाकर बेचने काम भी किया। तालाब गहरीकरण की सामुदायिक पहल के दौरान गूंज संस्था की ओर से मिली तात्कालिक मदद और राहत प्रशंसनीय रही।

तालाब गहरीकरण के लाभ, पीने का पानी मिला, खेतों में फसल लहलहाई

सामुदायिक मेहनत रंग लाई और बरसात आते ही तालाबों में लबालब पानी भर गया। इससे पशुओं और इंसानों के पीने के लिए तो पानी मिला ही, मिट्टी में नमी बढ़ी और स्थानीय लोगों को खेती करने में भी मदद मिली। आमतौर पर जो परिवार पलायन करके मजदूरी के लिए दूसरी जगहों पर चले जाते थे, वे अब ज्यादा समय गांव में ही रुक कर अपनी जमीन पर खेती करने लगे हैं। उन्होंने गेहूं, चना और सरसों की खेती की। उनके बंजर पड़े खेतों में भी फसल लहलहानी शुरू हो गईं।

मचाखुर्द की रामदुलारी आदिवासी कहती हैं कि तालाब की सफाई और गहरीकरण होने से पानी का भराव बढ़ा है। इससे इंसानों और जानवरों दोनों को ही सुविधा हुई है। वहीं टपरपुरा के रामसेवक आदिवासी कहते हैं कि पानी की सुविधा होने से खेतों को बेहतर सिंचाई मिल पा रही है और उपज में भी सुधार हुआ है।

कुछ तथ्य

- रोजगार का संकट बहुत बड़ा है, लेकिन सामुदायिक स्तर पर अगर साथ बैठकर विचार किया जाए तो वैकल्पिक राह निकलनी मुश्किल नहीं है।
- तालाब गहरीकरण मात्र एक घटना है लेकिन इससे जुड़े हुए लाभ अनेक हैं। तालाब में पानी एकत्रित होने से एक साथ पेयजल, पशुओं के पीने और खेती तीनों समस्याओं का समाधान हुआ।
- गहरीकरण का काम सामुदायिक स्तर पर करने से मुश्किलें कम हुईं और काम जल्दी पूरा हुआ। यह काम यदि शासन के भरोसे छोड़ा जाता तो पता नहीं कब पूरा होता, होता भी या नहीं। सामुदायिक जुड़ाव के कारण किसी एक व्यक्ति पर बोझ नहीं पड़ा और काम भी जल्दी हुआ।

बोरी बंधान की सामुदायिक पहलः डूब से बचाव और बंपर फसल

शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक के जाखनोद तथा कुछ अन्य गांवों के लोगों ने सामुदायिक सहयोग से बांधों को फूटने से बचाया। पानी की समुचित उपलब्धता से खेती में भी सुधार देखने को मिला। इस सकारात्मक प्रयास को विस्तार से समझते हैं।

देश के तमाम हिस्सों की तरह 2021 में शिवपुरी जिले में भी अच्छी बारिश हुई। बारिश से जिले के तालाब भी लबालब भर गए थे। अच्छी फसल होने की उम्मीद थी। जिले के जाखनोद गांव के करीब चार-पांच किलोमीटर के दायरे में दो तालाब थे, जो क्षेत्र की पानी और सिंचाई संबंधी जरूरतें पूरी करते थे। भारी बारिश के बीच जाखनोद गांव के लोगों ने ध्यान दिया कि पानी तालाबों से छलककर बाहर आने लगा है। गांव के चार घर इस पानी से काफी प्रभावित हुए और यह आशंका पैदा हुई कि कहीं तालाब के किनारे फूट न जाएं। यदि तालाब के किनारे फूटते तो केवल जाखनोद नहीं बल्कि आसपास के तीन अन्य गांव नयागांव, बरईपुर और पोहरी भी बुरी तरह प्रभावित होते।

दोनों तालाब चार-पांच किलोमीटर भूभाग में बने हैं। चूंकि तालाब सदियों पुराने हैं, इसलिए इनका किनारा भी

पारंपरिक रूप से मिट्टी का बना हुआ है। पानी के लगातार टकराने से मिट्टी गलकर बहनी शुरू हो जाती है। उन जगहों पर अगर नई मिट्टी न डाली जाए तो पानी का रिसाव भी शुरू हो जाता है। सिंचाई के लिए पानी पहुंचाने के लिए मोरी बनाई जाती हैं। वहां से अगर पत्थर निकल जाएं तो भी टूट की आशंका पैदा हो जाती है।

इन्हीं आशंकाओं के बीच गांव वालों ने स्थानीय प्रशासन को सूचना दी, लेकिन प्रशासन की ओर से कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। अगस्त 2021 में स्थानीय एसडीएम और नगर पंचायत के सीईओ से बात हुई थी। नगर पंचायत सीईओ मौके पर पहुंचे, लेकिन पानी के तेज बहाव को देखकर इस डर से उलटे पांव लौट गए कि कहीं तालाब का बांध फूट न जाए। पानी का बहाव बहुत ज्यादा था। उसके बाद प्रशासन की ओर से इस विषय पर कोई पहल नहीं हुई तो गांव वालों ने संस्था के जिला समन्वयक अजय यादव से संपर्क कर मदद मांगी। अजय यादव ने भोपाल कार्यालय में इसकी सूचना दी। भोपाल कार्यालय के प्रयासों से नई दिल्ली के संगठन गूंज के साथ तालमेल कर इस दिशा में आगे प्रयास किए गए।

सामुदायिक पहल से हुआ बोरी बंधान

अजय यादव ने स्थानीय समुदाय से इन हालात पर चर्चा की। इस पर सहमति बनी कि अगर तालाब का किनारा टूटता है तो जाखनोद, नयागांव, बरईपुरा और पोहरी जैसे चार गांव बुरी तरह प्रभावित होंगे। तालाबों को फूटने से रोकने के लिए बोरी बंधान का निर्णय लिया गया। सहमति बनने के बाद समुदाय खुद सामने आया और सैकड़ों लोगों ने अपने-अपने घरों से बोरियों के खाली कट्टे जुटाने शुरू किए। इनमें मिट्टी डालकर तालाब के उन किनारों पर डालना शुरू किया गया, जहां से टूट-फूट की आशंका थी। तालाब पर बोरी बंधान के इस काम में 100 से अधिक लोगों ने लगातार तीन दिन तक काम किया। इस दौरान गांव के लोगों की आजीविका ठप रहने से उनके परिजन को खाने-पीने में समस्या हो सकती थी। इसका हल भी निकल आया और विकास संवाद ने गूंज संगठन की सहायता से आटा-दाल, तेल-गुड़ और मूंगफली जैसी खाद्य सामग्री की राहत राशन किट तैयार करके गांव में बांटी।

सामुदायिक सहयोग रंग लाया और बोरी बंधान की मदद से तालाबों को फूटने से बचाया जा सका। चूंकि तालाब में पानी का भराव अच्छा है इसलिए तालाब से इन गांवों के लोगों की 1,400 बीघा जमीन की सिंचाई के लिए काफी पानी एकत्रित हो गया। जबकि पहले इन्हीं तालाबों से बमुश्किल 200-300 बीघा खेतों में सिंचाई हो पाती थी।

जाखनोद के मोतीलाल यादव (50 वर्ष) कहते हैं, 'तालाब के पानी के माध्यम से खेती तो पहले भी करते थे, लेकिन इस बार अच्छा पानी होने की वजह से हमने ढाई और चार बीघा वाले दो खेत और बोए हैं। पहले पानी कम होने की वजह से हम वहां तक नहीं पहुंच पाते थे। इस बार खूब पानी होने की वजह से गेहूं और सरसों की खेती कर पाए हैं। हर साल की अपेक्षा ज्यादा फसल लगा पाए हैं।'

अजय यादव भी मोतीलाल यादव की बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं, 'मैंने भी दो परिवर्तन देखे। अब एक बीघा सरसों की खेती में छ-सात क्विंटल सरसों की उपज हो रही है। जबकि पहले ज्यादा से ज्यादा ढाई-तीन क्विंटल प्रति बीघा उपज ही हो पाती थी। यही कारण है कि इस बार उपज ज्यादा होने से किसानों की आय भी सुधर गई है। किसान उत्साहित हैं। इस बार कोई खेत खाली नहीं है। हर खेत में फसल लहलहा रही है।' इस बार इन गांव वालों ने अपने खेतों में सरसों, चना और गेहूं की फसल लगाई है। यह पानी की उपलब्धता का ही कमाल है कि इस समय गांव वालों के पास इतनी खेती है जितनी इससे पहले उन्होंने शायद कभी नहीं की थी।

सामुदायिक स्वास्थ्य प्रबंधन की कहानी

तपेदिक (टीबी) और परंपराओं की चुनौती

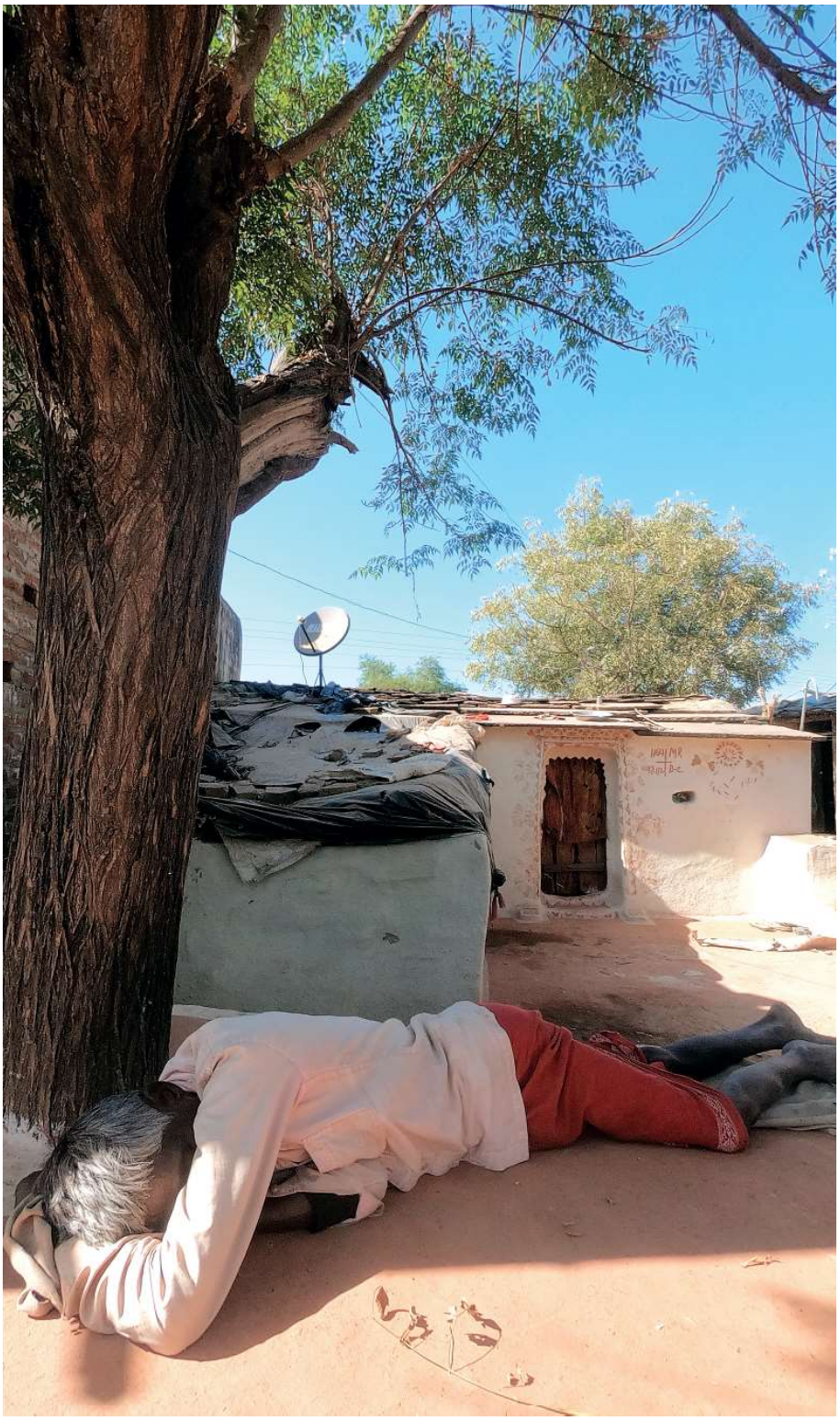

रा....नी, ओ... रा...नी ! अपनी बेटी को पुकार रहे चरन के गले से अब आवाज निकल ही नहीं पा रही थी। मानो गले के अंदर कांटे उग आए हों और आवाज किसी रेशमी दुपट्टे की तरह उनमें फंस कर फट रही हो। पिछले 5 मिनट में करीब 50 बार वह खांस चुका था। और अब तो खांसी की आवाज भी बाहर निकलने को राजी नहीं थी। चरन ने एक बार फिर चारपाई पर पड़े-पड़े अपने हाथ नीचे किए कि शायद पानी का लोटा टकरा जाए और घूंट भर पानी पीने से उसकी खांसी को थोड़ा सा आराम मिल जाए। पर ऐसा नहीं हुआ।

मजबूरन चरन को उठना ही पड़ा। कमर पर हाथ रखकर वह धीरे-धीरे झोपड़ी के अंदर एक कोने में रखे पानी के घड़े तक पहुंचा। लोटा वहीं बगल में टेढ़ा होकर पड़ा हुआ था। चरन ने लोटा उठाया, घड़े के ऊपर रखा मिट्टी का सकोरेनुमा ढक्कन हटाया और घड़े में से आधा लोटा पानी भर लिया। उसने दो घूंट पानी गट-गट कर गले से नीचे उतारा। इससे खांसी में थोड़ा सा आराम मिला। वह फिर अपनी चारपाई पर जाकर लेट गया। बगल में उसकी पत्नी सावनी बेसुध सो रही थी। पत्नी का जन्म सावन के महीने में हुआ था, इसलिए उसे सावनी नाम दिया गया था। उसे हर दिन और खासकर रात में होने वाली पति की खांसी की ऐसी आदत हो गई थी कि अब उसकी गहरी नींद में खांसी से कोई खलल नहीं पड़ती थी। वैसे भी दिन भर खेत और घर के काम में खटने के बाद वह इतना ज्यादा थक जाती थी कि रात में सोते समय उसमें और मुर्दे में अंतर करने वाले को इनाम मिल सकता था।

ये कहानी है चरन की। चरन सहरिया जनजाति का 55 साल का आदिवासी है।

वही सहरिया जो मध्यप्रदेश के सात जिलों श्योपुर, शिवपुरी, अशोकनगर, गुना, ग्वालियर, भिंड और मुरैना के अलावा राजस्थान के कुछ सीमावर्ती जिलों में रहते हैं। सहरिया को सरकार ने विशेष रूप से कमजोर जनजाति माना है और बैगा तथा भारिया जनजाति के साथ इन्हें भी अलग श्रेणी में रखा गया है। ये वही सहरिया आदिवासी हैं जो अपने आपको भीलों का छोटा भाई कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं। वहीं कुछ लोग मानते हैं कि सहरिया शब्द सह+हरिया से आया है, जिसका अर्थ है शेर (मध्यप्रदेश और राजस्थान के संदर्भ में इसे बाघ पढ़ सकते हैं) के साथ होना। यानी यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि ये जंगल में शेरों के साथ रहते आए हैं। यह भी मान्यता है कि सहरिया कतार-बद्ध मकानों के समूह में रहते हैं जिसे सहराना कहते हैं। फारसी भाषा में शहर का आशय जंगल होता है। और ये आदिवासी जंगल में रहते हैं, शायद इसलिए भी इन्हें सहरिया कहा जाता है।

अब हम लौटते हैं चरन आदिवासी और उसकी कहानी पर। उसके गांव का नाम भोजपुर है। यह शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक में आता है। चरन के गांव भोजपुर का इतिहास भी काफी रोचक है। यह कई दशक पहले राजस्थान के पारी गांव से आए लोगों ने बसाया है। गांव में अन्य आदिवासियों के साथ चरन अपने पिता मानसिंघा और पत्नी सावनी के अलावा 4 बेटों और एक बेटी रानी के साथ रहता है। चरन के घर के पास ही दो और झोपड़ियां बनी हुई हैं, जिसमें चरन के बेटे अपनी पत्नियों के साथ रहते हैं। बेटी रानी की भी शादी हो चुकी है, वह इन दिनों अपनी ससुराल यानी पड़ोस के गांव से कुछ दिनों के लिए घर आई हुई है। चरन के पास सरकार की ओर से पट्टे पर दी गई 5 बीघा जमीन भी है। इसमें वह बारिश के मौसम में खरीफ की फसलें उड़द, बाजरा, तिली आदि उगाता है। लेकिन इससे उसका और परिवार का गुजर-बसर नहीं हो पाता। उसके पास अंत्योदय अन्न योजना का पीला राशन कार्ड है। इस पर उसे हर माह 35 किलो राशन मिलता है। इससे थोड़ी राहत जरूर मिल जाती है।

लेकिन चरन को उसकी खांसी से कोई राहत नहीं मिल रही है। दरअसल तीन महीने पहले ही एक जांच में पता चला था कि चरन को टीबी है। टीबी यानी ट्यूबरकुलोसिस जिसे हम क्षय रोग, यक्ष्मा या तपेदिक भी कहते हैं, यह दुनिया की सबसे जानलेवा बीमारियों में से एक है। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक हर दिन, 4000 से अधिक लोगों की टीबी के कारण मौत हो जाती है और 30 हज़ार से अधिक लोग इससे पीड़ित होते हैं। यही वजह है कि दुनिया के सभी देशों ने 2030 तक टीबी उन्मूलन का लक्ष्य तय किया है, लेकिन भारत सरकार ने तय किया है कि वर्ष 2025 तक वह देश से टीबी खत्म कर देगी।

पिछले साल सितंबर, 2022 को राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपदी मुर्मु ने प्रधानमंत्री टीबी मुक्त भारत अभियान भी लांच किया। लेकिन चिंता की बात यह है कि केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की रिपोर्ट के मुताबिक 2021 में 2020 की तुलना में देश में टीबी रोगियों की संख्या में 19 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई है। साल 2020 में जहां देश में 16,28,161 लोग टीबी के शिकार थे, वहीं साल 2021 में यह संख्या बढ़कर 19,33,381 हो गई है। यह भी डरावना तथ्य है कि हर साल देश में टीबी के कारण सवा दो लाख से ज्यादा लोगों की जान जाती है।

यह सब बताना इसलिए जरूरी है कि चरन जिस सहरिया समुदाय से है वह टीबी से सबसे ज्यादा पीड़ित होने वाला समुदाय बन चुका है। यह खुलासा आईसीएमआर (इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च) की नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ रिसर्च इन ट्रायबल हेल्थ (एनआईआरटीएच) द्वारा सहरिया जनजाति बाहुल्य जिलों में 10 साल तक की गई स्टडी में हुआ। ये वही सात जिले हैं जहां सहरिया आदिवासी सबसे ज्यादा रहते हैं, यानी श्योपुर, शिवपुरी, अशोकनगर, गुना, ग्वालियर, भिंड और मुरैना।

अब आप सोच रहे होंगे कि अगर सरकार को पता है कि सहरिया समुदाय टीबी से सबसे ज्यादा पीड़ित है और जब सरकार ने इस समुदाय को विशेष दर्जा भी दे रखा है तो वह इसके लिए विशेष योजनाएं भी जरूर चला रही होगी। आपने सही सोचा। मध्यप्रदेश में टीबी उन्मूलन के लिए सात वर्षीय रणनीतिक राज्य सामरिक योजना 2019 से 2025 (एसएसपी-एमपी (2019-2025) बनाई गई है। इसके लिए सरकार ने प्राइवेट सेक्टर, एनजीओ से परामर्श के साथ ही अन्य चल रहे ऐसे कार्यक्रम के अनुभव और सीख के आधार पर अपनी रणनीति तैयार की है। सहरिया कार्य योजना भी इसके लिए चलाई जा रही है।

लेकिन यह तो हुई कागजी, किताबी और भाषणों में दी जाने वाली सरकारी बातें। हम आपको बता रहे हैं कि जमीन पर क्या हो रहा है। आखिर चरन की टीबी ठीक क्यों नहीं हो पा रही? दरअसल इसकी कई वजहें हैं। एक तो चरन और उसके समुदाय के अंदर पैठ बना चुकी यह धारणा कि वे टीबी को बीमारी मानते ही नहीं हैं। सहरिया समुदाय के बीच यह मान्यता है कि टीबी एक प्रकार का जादू-टोना होता है। अन्य सहरिया लोगों की तरह चरन भी यही मानता है कि उसे यह बीमारी इसलिए हुई है कि उसके किसी दुश्मन ने किसी भी प्रकार से खाने-पीने में मिलाकर कुछ दवाई खिला दी है। वे इसे सहरिया की भाषा में दिनाई कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि दिनाई जितने दिनों के लिए दी गई है उतने ही दिनों में उस व्यक्ति के ऊपर वह अपना असर दिखाने लगती है। इससे व्यक्ति धीरे-धीरे बीमार होने लगता है, उसका खाना-पीना कम होता जाता है। खांसी, बुखार शुरू होता है और इस प्रकार वह धीरे-धीरे कमजोर होता चला जाता है।

चरन भी अन्य सहरियाओं की तरह यही मानता है कि यह दिनाई उसके किसी दुश्मन ने किसी जादूगर से दिलवाई है। सहरिया मानते हैं कि दिनाई शेर का बाल और कांच मिलाकर दी जाती है। कांच आत्मा को काटता है और शेर का बाल आत्मा में एक जाल बिछाता है ताकि बीमार व्यक्ति जो भी खाए-पीए वह अंदर न जा पाए। कांच धीरे-धीरे आत्मा को काटता है जिससे शरीर कमजोर होता चला जाता है। सहरिया यह भी मानते हैं कि दिनाई जितने बड़े जानकार या जादूगर ने दिया है, उससे बड़ा जानकार या जादूगर ही इसके प्रभाव या असर को हटा पाता है। उससे छोटे जानकार यानि जादूगर की उतनी क्षमता नहीं होती।

इसमें यह बात हैरानी वाली है कि टीबी में भी फेफड़ों तक संक्रमण पहुंचने से व्यक्ति कमजोर होता जाता है। फेफड़ों के संक्रमण और आत्मा में शेर के बाल से जाल बिछाने वाली मान्यता में आश्चर्यजनक समानताएं हैं। बहरहाल, चरन अपने समुदाय की मान्यताओं को मानता है। इसीलिए अब तक वह भी अपनी बरसों पुरानी खांसी को दिनाई का नतीजा ही मानता आया है।

दिनाई का असर कम करने के लिए वह अक्सर अपने इलाके के जादू-टोना करने वालों या ओझा, गुणी आदि के चक्कर लगाता रहता था। उनके कहने पर कितनी ही बार बकरा, मुर्गा या शराब खरीद कर देवताओं को चढ़ाया गया। यह अलग बात है कि थोड़ा हिस्सा देवता को चढ़ता था, बाकी सारा ओझा आदि ही अपने घर ले जाते थे। अक्सर जड़ी-बूटियों के लिए भी चरन को इन ओझाओं या जादूगरों को पैसा देना पड़ता था। कई बार दिनाई एक बार में नहीं कटे तो दूसरी बार और दूसरी में नहीं कटे तो तीसरी बार भी प्रयास करना पड़ता है। और हर बार ए सारे खर्च मरीज को उठाने पड़ते हैं। चरन इस मामले में जरूर थोड़ा खुशनसीब था कि उसे दिनाई हटाने के अपने प्रयासों में अपनी जमीन गिरवी नहीं रखनी पड़ी। हालांकि उसी के गांव के कुछ ऐसे भी लोग हैं जो इन ओझाओं के चक्कर में अपने पैसों के साथ ही जमीन से भी दूर हो गए हैं। उन्होंने अपनी जमीन साहूकारों को गिरवी रख दी है ताकि दिनाई उतार सकें। अब यह जमीन वापस मिलने की उम्मीद नहीं के बराबर है।

ऐसा नहीं है कि चरन ने अपनी खांसी दूर करने के लिए सरकारी मदद हासिल करने की कोशिश नहीं की थी। वह तो कई बार अपने सरपंच के पास भी गया था। लेकिन सरपंच ने दो टूक कहा कि यह तो स्वास्थ्य विभाग वालों का काम है। इसमें हम भला क्या कर सकते हैं? जबकि यह पंचायत की जिम्मेदारी है किसी भी गांव में टीबी जैसी बीमारी न रहे इसके लिए उसे विलेज डेवलपमेंट प्लान तैयार करना चाहिए। पंचायतों की ऐसी भूमिका का जिक्र टीबी निवारण योजना में भी है। पर जमीन पर ऐसा होता दिखता नहीं। कुछ ऐसा ही हाल स्वास्थ्य विभाग और उससे जुड़े आशा कार्यकर्ताओं का है। स्वास्थ्य विभाग टीबी खत्म करने के लिए कई तरह की योजनाएं और कार्यक्रम चला रहा है। इनमें डॉट्स कार्यक्रम, टीबी निक्षय योजना, टीबी मुक्त भारत जैसी योजनाएं शामिल हैं, लेकिन जमीन पर देखते हैं तो वास्तविकता इसके विपरीत नजर आती है।

आशा कार्यकर्ता को गांव में टीबी के मरीजों की पूरी जिम्मेदारी दी गई है। इसमें दवा लाने, खिलाने से लेकर उसके पोषण को देखना, परिवार के साथ सलाह करना शामिल है। पर गांव में देखा जाए तो ऐसा कुछ दिखाई नहीं देता। हाल इतने बेहाल हैं कि अगर आशा कार्यकर्ता से पूछा जाए कि गांव में टीबी के कितने मरीज हैं तो उन्हे यह भी पता नही होता। वहीं, अगर थोड़े जागरूक मरीज खुद दवा लेने समुदाय स्वास्थ्य केंद्र पर जाते हैं तो उनसे दवाओं के भी पैसे लिए जाते हैं। निक्षय योजना में टीबी मरीज के पोषण के लिए 500 रुपए हर माह दिए जाते हैं। पर हकीकत यह है कि निक्षय योजना का पैसा तीन-तीन महीने तक खाते में ही नही आता। ऐसे में टीबी के खात्मे के लिए सरकार की योजना पर संदेह और सवाल खड़े होते हैं। जाहिर है कि चरन को जब सरकार को भी पैसे देने हैं और अपने जादूगर को भी पैसे देने हैं तो वह अपने समाज की मान्यताओं को प्राथमिकता देता है और जादूगर को पैसे देकर दिनाई उतारने की कोशिश करता रहता है।

हालांकि बीते तीन महीने से उसे सरकारी अस्पताल से दवाएं मिलनी शुरू हुई हैं। इससे उसे थोड़ा आराम भी है। लेकिन उसकी खुराक ऐसी नहीं है कि टीबी की दवाओं की गर्मी झेल सके। इस वजह से कुछ ही दिनों की खुराक के बाद उसने दवाएं लेनी कम कर दीं। बोला कि अब थोड़ा आराम है। लेकिन चरन का यह आराम उसकी बीमारी को खत्म करने नहीं देगा। केवल उसे और आगे बढ़ा देगा। यह कहानी केवल चरन की नहीं है। उसके जैसे हजारों सहरिया आदिवासियों की है। जो यह सवाल भी पूछ रहे हैं कि ऐसे ही हालात रहे तो केवल दो साल में भारत से टीबी भला कैसे खत्म होगी?

तपेदिक, नशा और गरीबी– वंचितपन का त्रिकोण

भोजपुर शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक में बसा 132 सहरिया जनजाति परिवार का गांव है। खेत मजदूरी के साथ ही पत्थर तुड़ाई और ढुलाई जैसे हाड़तोड़ मजदूरी के काम में लगे यहां के लोगों में नशे की लत और दिनाई जैसे अंधविश्वास के बीच टीबी रोग के बढ़ते मामले आदिम जनजाति समुदाय की चिंताजनक स्थिति दर्शाते हैं। ऐसे में यहां चल रहे टीबी रोग संबंधी जागरूकता और निदान की पहल के आशाजनक परिणाम सामने आ रहे हैं।

शिवपुरी -श्योपुर रोड पर पोहरी से 4 किलोमीटर चलें तो बाएं हाथ पर बसा है उपसिल ग्राम पंचायत का भोजपुर गांव। 447 की आबादी वाले इस गांव में 132 सहरिया परिवार मिट्टी, बांस और पत्थर से बने छप्पर नुमा घरों में रहते हैं, जिन्हें पाटोर भी कहा जाता है। खेत मजदूरी और पत्थर उत्खनन व परिवहन से जुड़े काम के भरोसे जीवन-यापन करने वाले इस समुदाय में स्वास्थ्य और रोजगार के संकट की गंभीर चुनौती बनी हुई है। वर्ष 2023 के शुरुआत में भोजपुर गांव में संस्था के प्राथमिक अवलोकन में 13 से 15 व्यक्तियों में टीबी के लक्षण मिले। वहीं बड़ी संख्या में युवा, किशोर व बुजुर्ग गुटखा, शराब तथा बीड़ी जैसे नशे के शिकार पाए गए। सहरिया समुदाय में टीबी के मामले बढ़ने का एक कारण यह भी है कि लोग खांसी-बुखार व कमजोरी जैसे लक्षणों को टीबी का संकेत नहीं मानते हुए जादू-टोना और दिनाई देना मानकर झाड़-फूंक में ही लगे रहते हैं।

भोजपुर गांव के सहरिया परिवारों के कमजोर स्वास्थ्य के पीछे उनके रोजगार और आजीविका संकट की स्थिति भी प्रमुख कारण है। यहां मनरेगा योजना से उन्हें नियमित काम नहीं मिलता। इस वजह से कई परिवार के सदस्य बड़े किसानों के खेत में कुछ अनाज और 200 रुपए की मजदूरी करके पेट पालते हैं। कुसुम आदिवासी के अनुसार कुछ परिवारों के पास दो से तीन बीघा पत्थर युक्त बंजर जमीन है, जिसपर बारिश के समय बाजरा, उड़द की खेती कर पाते हैं। जबकि कुछ अच्छी और उपजाऊ जमीन पर दबंग लोगों का कब्जा है। इस तरह सहरिया परिवार मुख्य रूप से दिहाड़ी मजदूरी और पीडीएस से मिलने वाले खाद्यान्न के भरोसे जीवन-यापन करते हैं। इनमें साफ-सफाई की कमी, स्वच्छ पेयजल न मिलने और जन्म के समय से ही पोषण की कमी के साथ-साथ नशा भी टीबी जैसे रोग के फैलने का बड़ा कारण है। इस समुदाय की महिलाओं में भी एनीमिया और टीबी रोग के लक्षण मिल रहे हैं।

टीबी रोग को जादू-टोना और दिनाई मानने की चुनौती

सहरिया समुदाय में लगातार कमजोरी, खांसी और बुखार बने रहने जैसे टीबी के लक्षणों के सामने आने के बाद भी बलगम जांच कराने की प्रवृत्ति कम है। क्योंकि वे इसके पीछे जादू-टोना करने या खाने में दिनाई देने की शंका को प्रमुख कारण मानते हैं। यह मान्यता है कि जब किसी दुश्मन की ओर से किसी भी प्रकार से खाने-पीने में कुछ ऐसी दवा या अन्य चीज मिलाकर धोखे से खिला दी जाती है तब उसे सहरियाओं की भाषा में दिनाई देना कहा जाता है। गांव में मानते हैं कि दिनाई जितने दिनों के लिए दी गई है उतने ही दिनों में उस व्यक्ति पर असर दिखाने लगती है। इससे व्यक्ति धीरे-धीरे बीमार होने लगता है। अक्सर उसकी मृत्यु भी हो जाती है।

इसलिए समुदाय में ही दिनाई झाड़ने वाले कुछ लोग होते हैं, जिनके पास लोग मुर्गी, मुर्गे से लेकर बकरे तक की बलि चढ़ाते हैं। फिर भी जब कोई फायदा नहीं होता और मरीज की हालत बिगड़ने लगती है, तब कहीं जाकर उसे अस्पताल ले जाते हैं। सरकारी अस्पताल में जांच में टीबी होने पर डॉट्स तहत 6 माह की दवा दी जाती है। वे कुछ दिन तो खाते हैं लेकिन बाद में दवा से गर्मी होने की बात कहकर बीच में दवा छोड़ देते हैं।

संजय धाकड़ विकास संवाद के ज़मीनी साथी है। पिछले दिनों उनका अल्पायु में ही उनका देहांत हो गया। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

सब्बाराम कैसे हुए तपेदिक से मुक्त?

सहरिया जनजाति के सब्बाराम आदिवासी 50 साल के हैं। वे अपने चार बच्चों और पत्नी सिया बाई के साथ झोपड़ी में रहते हैं। इस गरीब परिवार को अंत्योदय अन्न योजना से हर माह 35 किलो राशन मिलता है। इनके पास पिता से मिली 5 बीघा खेती है, जिसपर खरीफ की फसल के साथ ही विकास संवाद के सहयोग से तैयार पोषण वाटिका से कुछ सब्जियां भी पैदा हो जाती हैं। सिया बाई इस बात से बहुत खुश हैं कि उनके पति को टीबी जैसे गंभीर रोग से छुटकारा मिल चुका है। आखिर यह हुआ कैसे, पढ़िए पूरी कहानी...

सब्बाराम कहते हैं कि अब उनकी खांसी खत्म हो चुकी है। कभी-कभार जब ठसका लगता है तो पुराने दिन याद आ जाते हैं, इसलिए उन्होंने अब तक डॉट्स (दवा) का डोज़ लेना बंद नहीं किया है, लेकिन 7-8 माह पहले उनकी हालत काफी गंभीर थी। उनकी बीमारी से घर में रोजगार का संकट बढ़ता जा रहा था। इस कठिन समय में पत्नी सिया बाई ने खेत मजदूरी करके परिवार के भोजन और इलाज व अन्य खर्च उठाया।

परियोजना के तहत जब कोर ग्रुप की सदस्य रामवती व अन्य साथियों के साथ सितंबर 2022 में भोजपुर गांव का बेस लाइन सर्वेक्षण हो रहा था, तब सब्बाराम अपनी झोपड़ी में गंभीर रूप से बुखार से पीड़ित होकर खांस रहे थे। उनका वजन भी काफी कम था। सामुदायिक कार्यकर्ता संजय धाकड़ ने उनसे टीबी के लक्षण की जांच कराने की न सिर्फ सलाह दी, बल्कि अपने साथ सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी ले जाकर जांच भी कराई। सब्बाराम शुरू में यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि उन्हें टीबी है। वे दिनाई देने या जादू-टोना किए जाने की आशंका के कारण लंबे समय से झाड़-फूंक कराते आ रहे थे। इस बीच कभी-कभार निजी डॉक्टरों से दवा ले लेते थे। जांच में पॉज़िटिव आने के बाद 6 माह का डाट्स कोर्स (दवा का पैकेज) शुरू किया गया।

रामवती के अनुसार शुरू के दो महीने सब्बाराम के लिए दवा खाना मुश्किल रहा। वह बार-बार गर्मी लगने और दवा बंद करने की बात करते थे। तब हम लोगों ने संस्था कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर उन्हें समझाया कि वे लगातार दवा की पूरी खुराक लेते रहें। इसी बीच इस परिवार के घर में पोषण वाटिका तैयार करने में भी सहयोग दिया गया, जिससे खाने में हरी सब्जी-भाजी मिलने लगी। इसके साथ ही स्वास्थ्य विभाग से समन्वय कर सब्बाराम को निक्षय पोषण योजना का लाभ दिलवाने के लिए निक्षय आईडी बनवाई गई। इससे उसे ₹500 प्रतिमाह मिलने लगा। इस तरह सब्बाराम ने 6 माह की दवा पूरी की और फॉलोअप टेस्ट में निगेटिव आ गए। सब्बाराम को टीबी से छुटकारा मिला। अब वे गांव के दूसरे मरीजों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गए हैं।

छूटी शराब, अब बदल रही है परिवार की सोच

सब्बाराम कहते हैं कि "पहले मैं बहुत शराब पीता था। जब से मुझे यह बीमारी लगी है तब से डॉक्टरों ने शराब पीने के लिए बिल्कुल मना किया है। मैंने शराब तो छोड़ दी है, पर बीड़ी नहीं छूट रही है। यदि बीड़ी नहीं पीता तो पेट साफ नहीं होता। फिर भी पूरी तरह से नशा छोड़ने की कोशिश कर रहा हूं।" सिया बाई बताती हैं कि उनके यहां पर गुटखा, बीड़ी का रोजाना का खर्च 40-50 रुपए थे और जब कभी पति शराब पीते थे तो 200 रुपए खर्च हो जाते थे। अब बीमारी तो ठीक हो ही रही है, इन खर्चों में भी कमी हुई है। खर्चे कम हुए है तो अब बचत भी होती ही है। घर में अब पहले से ज्यादा शांति का माहौल रहता है। सहरिया जनजाति के दूसरे परिवारों की तरह ही यह परिवार भी पहले टीबी रोग को पुराने कर्मों का फल और किसी दुश्मन द्वारा खाने में दिनाई देने का नतीजा मानकर डर के साथ ही कष्ट भोगता रहा है। उसने 4 से 5 बार दिनाई झड़वाने और देवी-देवता को मनाने के लिए अंडा-बकरा और शराब में पैसा लुटाया है। भोजपुर गांव में सहरिया आदिवासी परिवारों में टीबी रोग जैसी बीमारियों को लेकर जारी रूढ़िवादी और अंधविश्वास, जागरूकता की कमी और पोषण व स्वास्थ्य सुरक्षा व्यवस्था की कमियों के बीच सब्बाराम की इस कहानी ने बदलाव की एक सकारात्मक शुरुआत की है। यह एक ऐसा उदहारण है जिस से लोगों में दवाई और इलाज बनाना शुरू हो रहा है।

तपेदिक और नशे के खिलाफ जारी है नीरज की जंग

टीबी रोग को लेकर स्थानीय सहरिया समुदाय की मान्यता और स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति विश्वास को लेकर द्वंद चलता रहा है। फिलहाल सामुदायिक कार्यकर्ता और स्वास्थ्य विभाग के जमीनी अमले के सहयोग से नीरज और उसके परिवार में टीबी संक्रमण रोकने और दवा के नियमित उपयोग की रणनीति के साथ नजर रखी जा रही है।

शिवपुरी जिले के पोहरी जनपद के भोजपुर गांव में रहते हैं 20 साल के नीरज आदिवासी। इनके परिवार में कुल 5 सदस्य हैं। नीरज अपने पिता भोपा, माता कृष्णा, भाई सोनू और बहन रश्मि के साथ एक ही झोपड़ी में रहते हैं। नीरज के पिता के नाम से अंत्योदय अन्य योजना का राशन कार्ड है, जिससे हर माह 35 किलो राशन मिलता है। यही परिवार के खाद्यान्न का प्रमुख स्रोत है। नीरज के परिवार में 3 बीघा अर्धसिंचित जमीन है जिसपर बारिश के समय बाजरा, उड़द तिल्ली आदि की खेती होती है। इस तरह परिवार की आजीविका के लिए खरीफ सीजन को छोड़कर बाकी समय दिहाड़ी मजदूरी पर निर्भर रहना पड़ता है। यही कारण है कि गांव के दूसरे सहरिया परिवारों की तरह ही इस परिवार के सदस्य भी राजस्थान जाते हैं, क्योंकि वहां से गेहूं और मजदूरी मिल जाती है, जिससे परिवार के खाद्यान्न की जरूरत पूरी होती है।

जुलाई-अगस्त 2022 से नीरज की तबीयत ठीक नहीं है। उसे लगातार जुकाम, खांसी, बुखार की समस्या रही है। नीरज की जब तबीयत खराब हुई तब ग्रामीणों ने उसे दिनाई झड़वाने की सलाह दी। इसके बाद परिवार उसे जिला श्योपुर की विजयपुर तहसील के गांव पीपरबावड़ी ले गया और वहां झाड़-फूंक करवाया। इस बीच दिनों-दिन नीरज की तबीयत बिगड़ती चली गई। तब उसे दिसंबर माह में शिवपुरी के प्राइवेट डॉक्टर के पास ले गए। जहां उसका एक्सरे और अन्य जांचें हुईं। वहां डॉक्टर ने 5000 से 6000 रुपए का खर्चा बताया। नीरज के परिवार ने इतना पैसा देने में असमर्थता जताई और खांसी की दवा लेकर गांव भोजपुर लौट आए।

इन सब प्रयासों के बाद भी जब नीरज की तबीयत में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ तब संस्था के कार्यकर्ता संजय धाकड़ ने परिवार को टीबी के बारे में बताया। वे उन्हें जांच के लिए तैयार कर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी ले आए। यहां छाती का एक्सरे कराया, बलगम की भी जांच करवाई। इस जांच में नीरज को टीबी से ग्रसित होना पाया गया। इसके बाद उसे नशा नहीं करने और नियमित दवा का सेवन करने की सलाह के साथ डाट्स के तहत 6 माह तक दवा लेने के लिए समझाया गया। इस तरह स्थानीय सहयोगी के सहयोग से नीरज ने 3 माह दवा खाई। उसके बाद नीरज को दवाओं से अधिक गर्मी हो गई और पेशाब से खून आने लगा तो परिवार बिना जानकारी दिए फिर से श्योपुर जाकर दिनाई झड़वा आया। इस तरह टीबी रोग को लेकर स्थानीय सहरिया समुदाय की मान्यता और स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति विश्वास को लेकर द्वंद चलता रहा है। फिलहाल सामुदायिक कार्यकर्ता और स्वास्थ्य विभाग के जमीनी अमले के सहयोग से नीरज और उसके परिवार में टीबी संक्रमण रोकने और दवा के नियमित उपयोग की रणनीति के साथ नजर रखी जा रही है। इन सब प्रयासों का नतीजा है कि नीरज के स्वास्थ्य में निरंतर सुधार हुआ है।

किशोर उम्र से नशे की लत बनी है बीमारी का कारण

नीरज अपनी कमजोर शारीरिक स्थिति और टीबी रोग के पीछे किशोर उम्र से लगी नशे की लत को मुख्य कारण मानते हैं। उनके अनुसार 13 साल की उम्र से ही जब वे अपने दोस्तों के साथ मजदूरी करने बाहर जाते थे, तो वहां दिनभर के थकावट के बाद सभी शाम को शराब पीकर सो जाते थे। ऐसे में कभी-कभी वह भी उनके साथ पी लेते थे। बाद में ज्यादा शराब पीने की आदत पड़ गई। इसी के साथ ही बीड़ी, गुटखा की लत भी लग गई। अब नीरज कहते हैं, इलाज के दौरान डॉक्टर और संस्था के कार्यकर्ता ने शराब नहीं पीने के लिए कई बार समझाया, तब से मैंने शराब नहीं पी है, लेकिन कभी-कभी बीड़ी पी लेता हूं और गुटखा भी खा लेता हूं। इन सब कारणों के साथ ही नीरज जैसे युवाओं द्वारा समय पर पर्याप्त आहार नहीं लेना और 7 से 8 घंटे का धूल और गंदगी के बीच कठोर मेहनत करना भी ऐसी बीमारियों का कारण रहा है। फिलहाल नीरज के सेहत में हो रहे सुधार और शराब जैसा नशा छोड़ने के साथ ही उसके परिवार वालों में टीबी की जांच व सरकारी इलाज के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

नोटः- उपरोक्त कहानी में वर्णित नाम व बातों के संबंध में संबंधित व्यक्तियों से सहमति ली गई है।

बीमारियों से बड़ी है इलाज की चुनौती

शिवपुरी जिले के पोहरी जनपद में रहने वाले सहरिया जनजाति के वंचित परिवारों में खेती के नाम पर महज बंजर और असिंचित जमीन का कुछ टुकड़ा ही होता है, जिससे वे परिवार की आजीविका चलाते हैं। किन्तु टीबी जैसे रोग के कारण कई बार उन्हें अपने खेत तक गिरवी रखने पड़ते हैं। लक्ष्मीपुरा के हजारी आदिवासी की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। उन्हें प्राइवेट हॉस्पिटल में इलाज के लिए अपना 3 बीघा खेत गिरवी रखकर 40 हजार का कर्ज लेना पड़ा। फिलहाल टीबी रोग से जूझ रहे हजारी के लिए अपनी गंभीर होती बीमारी के साथ ही साहूकार का कर्ज चुकाने की दोहरी चिंता बनी हुई है।

लक्ष्मीपुरा

गांव के सहरिया जनजाति के हजारी आदिवासी का जन्म शिकारीपुरा में हुआ था। पिता सवाई आदिवासी के पास 25 बीघा सरकारी पट्टे की जमीन थी। इसमें से हजारी के परिवार को टुकड़ों में 7 बीघा जमीन मिली। इसमें 2 बीघा बंजर है जबकि बाकी जमीन बिखरी हुई है। हजारी के 7 सदस्यों वाले परिवार को अंत्योदय अन्न योजना से 35 किलो राशन मिलता है। इससे उन्हें 15 से 20 दिन तक का खाना तो मिल जाता है। बाकी जरूरतों के लिए हजारी पत्थर खदान या अन्य काम में दिहाड़ी मजदूरी करते रहे हैं। लेकिन बीते 4-5 साल से वे टीबी जैसे रोग का सामना कर रहे हैं।

हजारी चाहते थे कि उनका बेटा पंजाब खूब पढ़े। इसलिए खूब मेहनत मजदूरी बेटे को 10वीं क्लास तक सरकारी स्कूल में पढ़ाया उसके बाद कम फीस की बात कर 11वीं, 12वीं प्राइवेट स्कूल में पढ़ाया, लेकिन आर्थिक स्थिति ठीक ना होने के कारण वह पूरी फीस जमा नहीं कर सका तो स्कूल वालों ने 12वीं क्लास की मार्कशीट की फोटो कॉपी दे कर निकाल दिया। इसके बाद पंजाब ने सरकारी कॉलेज से अपना बी.ए. पूरा किया। फिलहाल वह भी मां की तरह यहां-वहां मजदूरी करके घर चलाने में सहयोग कर रहा है। यह परिवार गेहूं कटाई के सीजन में राजस्थान के बारां जिला स्थित सुपाड़ जाकर खाने के लिए कुछ गेहूं और लगभग 2000 रुपए जुटा लेता है, जिससे घर का खर्च चलता है।

जटिल होती जा रही है टीबी रोग की समस्या

हजारी आदिवासी वर्ष 2001 से शिवपुरी के मझेरा पत्थर खदान में काम करते रहे हैं। तब 2013-14 में उन्हें खांसी-बुखार होने पर पहली बार टीबी होने का पता चला। इसके बाद इलाज शुरू हुआ। इस बीच कभी तबीयत ठीक हो जाती तो कभी बिगड़ जाती थी। वे 2 से 3 बार सरकारी अस्पताल से मिलने वाली टीबी की दवा खा चुके हैं लेकिन पिछले 4-5 साल से उनकी कमजोरी और बुखार-खांसी ने गंभीर रूप ले लिया है। वे कहते हैं, ऐसा लगता है जैसे सीने पर पत्थर रखा हुआ है।

फिर जब कोविड आया तब उन्हें डर लगा कि कहीं कोरोना न निकल जाए इसलिए घर पर ही झोलाछाप डॉक्टर और झाड़-फूंक करने वाले को दिखाते रहे। सरकारी दवाएं खाने के बाद सही खानपान नहीं होने और कमजोरी के कारण शरीर में ज्यादा गर्मी और घबराहट होने लगी तब उन्होंने प्राइवेट हॉस्पिटल में दिखाया। आखिर मई 2022 में उन्हें सांस फूलने और सूखी खांसी और कमजोरी की तकलीफ बढ़ गई, तब शिवपुरी के प्राइवेट हॉस्पिटल में जाकर इलाज कराया। इसके लिए स्थानीय साहूकार से अपनी 3 बीघा खेत गिरवी रखकर 40 हजार रुपए कर्ज लिया। फिलहाल हजारी की तबीयत में सुधार तो है, लेकिन बीमारी जड़ से खत्म नहीं हुई है।

सामाजिक कार्यकर्त्ता अजय सिंह यादव कहते हैं कि सहरिया समुदाय में हजारी आदिवासी मजदूर जो पत्थर खदान से जुड़े रहे हैं उनमें टीबी बिगड़ने के साथ ही सिलिकोसिस के संकेत देखे जा रहे हैं, लेकिन स्वास्थ्य विभाग के पास इसकी जांच और इलाज की फिलहाल कोई व्यवस्था नहीं होने से मरीजों का जीवन संकट में बना हुआ है। वे स्थानीय प्रशासन के साथ इस दिशा में पैरवी कर रहे हैं। साथ ही जरूरतमंद परिवारों के लिए पोषण वाटिका, मुर्गी पालन सहित खाद्यान्न और बीज की उपलब्धता सुनिश्चित कर रहे हैं। टीबी से जूझ रहे परिवारों में बच्चों के कुपोषण से सुरक्षा एवं मरीजों के आहार-व्यवहार में स्वच्छता अपनाने और नशा छोड़ने के लिए समुदाय को जागरूक किया जा रहा है।

शरीर से ज्यादा मन को दुखाता माहवारी का दर्द

शिवपुरी जिले के पोहरी जनपद के डांगबरवे पंचायत के मेहरा गांव में रहने वाली 15 वर्षीय किशोरी बालिका अंका जाटव के लिए पहले मासिक धर्म का अनुभव डर और अज्ञानता से भरा रहा। वह कहती है, जब 12 साल की उम्र में पहली बार कमर दर्द के साथ खून जाना शुरू हुआ, तब मैं 5 दिन तक छुप-छुप कर रोती रही। मैं यह सब कैसे किसी को बताऊं, कि यह मेरे शरीर में क्या हो रहा है? तब अंका को पहली बार अपने किशोरी समूह की बैठक में इस बारे में ठीक से जानकारी मिली। अब वह दूसरे किशोरियों से न सिर्फ मासिक धर्म के बारे में चर्चा करती है, बल्कि इससे जुड़ी रूढ़ियों के खिलाफ अपने तर्क भी रखने लगी है।

12 साल की होने तक अंका को किसी ने मासिक धर्म के बारे में कुछ बताया नहीं था। जब वह 2017 में किशोरी समूह से जुड़ी तब उसे बैठक में काउंसलर दीदी ने बताया कि मासिक धर्म हर लड़की के शरीर में किशोरावस्था में होने वाला एक बदलाव है। इससे घबराने की जरूरत नहीं है, न ही यह किसी तरह का पाप है। पर इस बात को स्वीकारने और समझने में उसे समय लगा। क्योंकि वह देखती रही कि उसके आसपास तो मासिक धर्म में कई तरह की रोक-टोक हैं। सबसे बड़ी बात कि गांव में इस बारे में कोई बात ही नहीं करता था। इसलिए जब किशोरी समूह के बैठक में स्वास्थ्य एवं शारीरिक स्वच्छता पर लड़कियों के साथ बातचीत शुरू हुई तब सभी में इस बारे में बातचीत में झिझक थी। फिर स्थानीय एएनएम, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता और काउंसलर की लगातार बैठक होने लगी। इसमें पोषण आहार और स्वास्थ्य सुरक्षा के विषय पर जानकारी देने के साथ खेलकूद का कार्यक्रम होने लगा। इस दौरान आपसी पहचान बढ़ने से मासिक धर्म के विषय में बातचीत शुरू हुई।

अंका बताती है कि जब हमने अपने शरीर के विकास के बारे में जानना शुरू किया तभी एनीमिया और शारीरिक वजन व ऊंचाई लेने की प्रक्रिया से जुड़ाव हुआ। इसके बाद हगांव में इस काम में सहयोग करना शुरू किया। क्योंकि लड़कियों को इन सब बातों के बारे में जागरूक करना जरूरी लगने लगा। लड़कियों से समूह में होने वाली बातचीत में पता चला कि इस दौरान साफ-सफाई का काफी महत्व है, क्योंकि अक्सर लड़कियां और महिलाएं गंदे कपड़े उपयोग कर लेती हैं। वे महंगाई के कारण सेनेटरी पैड का उपयोग नहीं कर पातीं। हालांकि अब कुछ किशोरियों को कभी-कभी आंगनवाड़ी से सेनेटरी पैड मिल जाता है। इसलिए कोई सुविधा नहीं होने पर हम लोग साफ सूती कपड़े का उपयोग करने की जानकारी अपनी स्कूल की सहेलियों और समूह के दोस्तों को देते हैं। जब से हमें समूह में नई-नई बातें जानने को मिलने लगी हैं तब से हम किशोरी समूह और कभी-कभी बाल समूह की मीटिंग में शामिल होकर किशोरावस्था में होने वाले बदलाव, लड़का-लड़की में भेदभाव, बाल विवाह और सही खान-पान के बारे में लगातार सीख रहे हैं। इस तरह मुझे समूह और संस्था के हर कार्यक्रम में शामिल होना और अपनी बात रखना अच्छा लगता है। इससे गांव वाले कहते हैं कि यह तो नेता बनेगी।

रूढ़िवादी सोच बदलने में जुट गई हैं किशोरियां

मेहरा गांव के किशोरी समूह से जुड़े सदस्यों के मन में मासिक धर्म को लेकर बनी रूढ़िवादी सोच को बदलने की खूब चाहत है। लेकिन कई बार धर्म और रीति-रिवाजों से जुड़े होने के कारण बदलाव कठिन हो जाता है। इसलिए अंका के अनुसार अब हम इसकी चर्चा महिलाओं और सहेलियों से तो कर पाते हैं, लेकिन अभी भी लड़कों-आदमियों के साथ कोई इस बारे में ज्यादा बातचीत नहीं करता। क्योंकि कुछ लोग इसे बीमारी की तरह देखते हैं। यहां गांव में मासिक धर्म के समय घर में कुछ काम ऐसे होते हैं, जिनपर रोक-टोक है। अचार और पीने के पानी को हाथ न लगाना, देवी देवताओं की पूजा और दर्शन नहीं करना, यहां तक कि कई परिवार में यदि उसका मासिक धर्म चल रहा है तो वह चूल्हे तक भी नहीं जा सकती है। उसे खाना भी कोई दूसरा देता है। वह खुद रसोई से खाना भी नहीं ले सकती है। यह सब बातें कितनी ठीक है कितनी नहीं, यह सब नियम क्यों बने यह सारे प्रश्न अब चर्चा परिचर्चा में उठाए जाने लगे हैं।

तपेदिक-जानकारी भी उपचार है!

शिवपुरी -श्योपुर हाइवे से दक्षिण दिशा में जंगल के बीच सरकुला नदी के किनारे बसा है कोल्हापुर गांव। इस गांव में 95 सहरिया परिवार रहते हैं। गांव के बारेलाल आदिवासी के अनुसार पहले लोग नदी को पैदल पार करके 2 किलोमीटर दूर पोहरी बाजार जाते थे, लेकिन वह रास्ता अब बन्द हो गया है, इसलिए 16 किलोमीटर घूमकर पोहरी जाना होता है। दूरी ज्यादा होने की वजह से लोग बीमार होने के बाद भी जल्दी अस्पताल नहीं जा पाते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच कम होने और जागरूकता की कमी के कारण सहरिया समुदाय में नशा और टीबी रोग के साथ ही मौसमी बीमारियों का प्रभाव भी देखा गया। इस वजह से यहां संस्था द्वारा सामुदायिक जागरूकता की पहल की जा रही है।

पिता को टीबी, बेटा लंबे समय से खांसी, बुखार से ग्रस्त

कोल्हापुर गांव में रहने वाले 40 साल के पप्पू आदिवासी के परिवार में कई सालों से बीमारियों का डेरा डला हुआ है। 5 सदस्य वाले इस परिवार के मुखिया पप्पू लंबे समय से टीबी के शिकार हैं। इनका बड़े बेटे बंटी को भी मई 2022 से खांसी और बुखार बना रहता है। अगस्त 2022 में जब सामुदायिक कार्यकर्ता के समझाने पर बंटी ने सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी जाकर कफ की जांच कराई, तब उसे टीबी का पता चला। इसके बाद से ही उसकी दवाइयां चल रही हैं। पप्पू के परिवार में सबसे छोटा बच्चा अंकेश 7 वर्ष का है। उसे आंखों की परेशानी है, आंखें हमेशा लाल रहती हैं। पप्पू आदिवासी के पास 6 बीघा जमीन है जिसमें सिर्फ बरसात की फसल बाजरा, तिल्ली, उड़द आदि ही होती है। फिलहाल वे गुजारे के लिए पत्नी और बेटी की मजदूरी पर निर्भर हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के तहत मिलने वाले 35 किलो राशन से इस परिवार को 10-12 दिन का भोजन मिल पाता है।

फैलता संक्रमण, दिनाई और दवा सेवन की दिक्कत

सहरिया समुदाय के मजदूरी करने वाले परिवारों में टीबी का संक्रमण फैलने के पीछे प्रमुख कारण रहा है सही समय पर जांच नहीं कराना। बीमारी को दिनाई देना मानकर झाड़-फूंक में लगे रहना, दवा का अनियमित सेवन और टीबी मरीज का सामान्य व्यक्ति की तरह परिवार में एक साथ सोना-खाना। एक अनुभव यह भी है कि टीबी की सरकारी दवा से काफी गर्मी होती है, जिससे मरीज दवा खाना बंद कर देते हैं। पप्पू ने दो बार टीबी का इलाज करवाया। पहली बार 6 माह तक दवा खानी थी, किन्तु जैसे ही थोड़ा आराम मिला, बीच में दवा खानी बन्द कर दी। इससे बीमारी दुबारा पनप गई। इस वजह से उनकी फिर से जांच कराकर नियमित दवा खाने के लिए समझाया गया है।

दवा बीच में क्यों छोड़ देते हैं, यह पूछने पर पप्पू कहता है, "दवा खाने के बाद एक दो घंटा बहुत घबराहट होती है। रात को नींद अच्छी से नहीं आती। खाना भी कम ही खा पाता हूं। दवा दिन में दो बार खानी होती है, सुबह और शाम दवा खाने के बादकाफी घबराहट होती है। इसलिए दवा बीच में छोड़ देते हैं।" इस संबंध में स्वास्थ्य विभाग के अधिकारी कहते हैं कि शुरू में कमजोरी के कारण ऐसा होता है, लेकिन नियमित दवा खाते रहने से स्थिति में सुधार हो जाता है। इसलिए 6 माह का पूरा कोर्स लेना चाहिए। इन परिवारों में नशे की लत भी कमजोरी और बीमारी का बड़ा कारण है, जिसे छोड़ने के लिए सामुदायिक कार्यकर्ता समुदाय को नुक्कड़ नाटक से जागरूक कर रहे हैं।

बीमारियों से जूझते परिवारों के बीच जागरूकता की पहल

विकास संवाद ने सहरिया समुदाय में टीबी रोग के बढ़ते संक्रमण के कारणों को जानने के साथ ही बीमारियों के निदान के लिए समुदाय को संगठित कर कोर कमेटी का गठन किया है। वहीं स्थानीय स्वास्थ्य विभाग के साथ मिलकर कोल्हापुर में टीबी रोग एवं स्वास्थ्य परीक्षण शिविर में 100 सदस्यों को विभिन्न बीमारियों की दवा दी गई। 9 व्यक्तियों की टीबी रोग की जांच कराई गई। इनमें से 4 का इलाज जारी है। कोल्हापुर गांव में ऐसे बीमार परिवारों को सही समय पर इलाज कराने के लिए संस्था की ओर से लगातार प्रेरित कर सहयोग दिया जा रहा है। साथ ही सहरिया समुदाय में नशे और दिनाई जैसे अंधविश्वास के खिलाफ भी सामुदायिक बैठकों के माध्यम से जागरूकता की पहल जारी है।

तपेदिक को रोकने की कवायद

उपसिल गांव की 26 वर्षीय अंगूरी आदिवासी कोविड के समय से टीबी से ग्रसित रही, लेकिन कोविड मरीजों की खबर देख सुनकर वह इलाज कराने कभी अस्पताल नहीं गई। उसके मन में डर था कि अस्पताल में न जाने क्या होगा? इधर अंगूरी की बीमारी घर की मासूम बच्ची को भी अपने चपेट में लेने लगी। ऐसे में टीबी निवारण परियोजना से जुड़े स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं द्वारा टीबी रोग के बढ़ते संक्रमण को रोकने के लिए महत्वपूर्ण कवायद शुरू की गई।

15 साल की उम्र में अंगूरी की शादी 17 साल के लालन सिंह के साथ हुई थी। गरीबी के कारण बचपन से ही लालन परिवार के साथ मजदूरी करने लगे। बीच-बीच में वे बड़ों के साथ राजस्थान और उत्तर प्रदेश के पड़ोसी जिलों में मजदूरी के लिए पलायन करते रहे। इसी बीच 17 साल की उम्र में अंगूरी ने अपनी पहली बेटी मुस्कान को घर पर ही जन्म दिया। वर्तमान में अंगूरी और लालन सिंह के 5 बच्चे हैं। परिवार नियोजन की बात करें तो सहरिया में परिवार नियोजन के साधनों को नहीं अपनाया जाता है। इस वजह से ज्यादातर सहरिया परिवार में बच्चे इतने ही होते हैं।

अंगूरी को डर था कि नसबंदी करवाने के बाद सिर में बहुत दर्द होता है इसलिए उसने नसबंदी नहीं करवाई। वहीं लालन का कहना है कि हमारे समाज में ज्यादा बच्चों से कोई डर नहीं है। बच्चा बड़ा हो जाता है तो मजदूरी करके अपना पेट भर लेता है। ऐसी सोच के बीच महिलाओं और बच्चों को कुपोषण के साथ ही टीबी जैसे संक्रामक रोग का सामना करना पड़ रहा है। इस गांव में कुछ व्यवस्थागत समस्याएं भी रही हैं। इनमें एक है गांव में आंगनवाड़ी केंद्र के संचालन में अव्यवस्था। यहां की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता उपसिल में न रहकर शिवपुरी में रहती हैं। वह ज्यादातर मंगलवार को ही गांव आती हैं। हाल यह है कि अंगूरी जैसी महिलाओं को स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के बारे में कभी ठीक से कोई सलाह नहीं दी गई।

कोरोना का डर और दिनाई का अंदेशा

लगातार प्रसव के बाद कमजोर हो चुकी अंगूरी कोविड 19 के शुरुआत से ही बीमार रहने लगी थी। उसे सर्दी, बुखार और खांसी जैसी तकलीफ थी। तब वह अपना इलाज गांव में आने वाले झोला छाप डॉक्टरों से करवाती रही। जब कोई आराम नहीं मिला तो अंगूरी मायके अपने पति के साथ गई और वहां गांव के किसी बुजुर्ग गुनिया को दिखाया। उसने बताया कि इस पर कुछ दिनाई है।

ऐसी मान्यता है कि दिनाई यानि शेर का बाल तथा कांच को मिलाकर किसी व्यक्ति को दिया जाता है। यह दिनाई जितने दिनों के लिए दी जाती है, उतने दिनों में व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है। गुनिया ने इसके साथ ही कुछ बाहरी हवा का चक्कर भी बताया। अंगूरी 4 से 5 माह तक ऐसे ही झाड़-फूंक करवाती रही। इस बीच उसकी तबीयत और खराब होती गई। बावजूद इसके अंगूरी ने फील्ड कार्यकर्ता द्वारा सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी जाकर इलाज की सलाह नहीं मानी। उसे डर था कि अस्पताल वाले कोरोना बताकर कहीं ले जाएंगे और मार देंगे। इसलिए वह अस्पताल जाने को तैयार नहीं होती थी। यहां तक कि वह अपना कफ का सैम्पल भी नहीं देती थीं। तब युवा समूह के साथ मिलकर अंगूरी के पति लालन को बीमारी की सही जांच और इलाज के बारे में समझाया गया।

लगातार समझाइश और नियमित दवा की सलाह

स्थानीय लोगों के समझाने के बाद उसका पति उसे पोहरी सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र ले गया तो वहां से डॉक्टर ने अंगूरी को जिला अस्पताल शिवपुरी रेफर कर दिया। वहां से थोड़ा आराम लगते ही 3 दिन बाद वे बिना सूचना दिए घर लौट आए। घर पर आकर कुछ दिन बाद पुनः अंगूरी की तबियत खराब होने लगी और उसकी 2 साल की बेटी उर्मिला को भी खांसी-बुखार हो गया। परिवार के दूसरे सदस्यों में टीबी रोग फैलने की आशंका को देखते हुए टीबी परियोजना के कार्यकर्ता संजय धाकड़ ने परिवार को बीमारी की गंभीरता बताते हुए पूरा इलाज कराने के लिए फिर से शिवपुरी मेडिकल कॉलेज में भर्ती कराया। वहां से कुछ दिन बाद वे फिर से कुछ दवा लेकर गांव भाग आए। फिलहाल वे घर पर ही दवा खा रहे हैं। इस परिवार को नियमित दवा का डोज़ पूरा करने और घर में साफ सफाई रखने संक्रमित मरीज से बच्चों को सुरक्षित रखने की सलाह दी गई है। ऐसे मामलों में फ्रंट लाइन वर्कर की सक्रियता और जवाबदेही को लेकर प्रशासन के साथ संवाद किया जा रहा है।

महिलाओं ने ली मचाखुर्द को नशा मुक्त करने की शपथ

मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले की पोहरी तहसील के मचाखुर्द गांव के सहरिया आदिवासी समुदाय की महिलाओं ने पुरुषों की शराबखोरी की लत और परिवार और समाज पर उसके दुष्प्रभावों से परेशान होकर तय कर लिया कि गांव में शराब का प्रभाव कम करने का हर संभव प्रयास किया जाएगा। उन्होंने तय किया कि इसके लिए गांव के पुरुषों को समझाया जाएगा। शराब का कारोबार करने वालों से आग्रह किया जाएगा और जरूरत पड़ने पर पुलिस की मदद भी ली जाएगी।

सरकार का मुफ्त राशन और पति की शराब से प्रताड़ना

मचाखुर्द गांव में सहरिया समुदाय के करीब 60 परिवार रहते हैं। धन्ती और राजू आदिवासी का परिवार भी उनमें से एक है। धन्ती और उसका पति भूमिहीन श्रमिक हैं। वर्तमान में धन्ती मजदूरी करके अपने परिवार का पालन पोषण करती है। परिवार के पास अंत्योदय कार्ड है, जिससे मिलने वाले 35 किलो मासिक अनाज से परिवार अपना पेट भरता है। उसका पति राजू कुछ समय पहले तक ट्रक चालन से जुड़े हुए काम करता था, लेकिन शराब की लत लगने के बाद ही उसने काम पर जाना छोड़ दिया।

शराब के नशे में वह अक्सर धन्ती के साथ मारपीट करने लगा। हालांकि धन्ती ने प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना के तहत मिले रुपयों से एक कमरा तो बनवा लिया है, पर पैसे की कमी की वजह से उसमें प्लास्टर तक नहीं हो सका है। वहीं, अक्सर धन्ती का पति राजू मारपीट करके उसे घर से बाहर भी निकाल देता। धन्ती को खुले आसमान के नीचे रात बितानी पड़ती। परिवार और समाज से उसे हमेशा यही सीख मिलती कि अपने बच्चों का ख्याल करो, धीरे-धीरे हालात सुधर जाएंगे?

- धन्ती इन परिस्थितियों से जूझने वाली इकलौती महिला नहीं थी।
- गांव की तमाम अन्य महिलाओं के साथ भी वर्षों से ऐसे ही हालात थे।
- ऐसे हर मामले में महिलाओं को ही बर्दाश्त करने की सीख दी जाती थी और नसीब पर निर्भरता बना डी गई।
- मानो परिवार और बच्चे अकेले औरत की ही जिम्मेदारी हों और घर में किसी और की नहीं।

नशे की गिरफ्त में कैसे आया गांव?

मचाखुर्द गांव के पास की मुख्य सड़क पर बंजारा समुदाय रहता है। इसका काम है शराब बनाकर बेचना। खुले में बिकती शराब और कोई रोक टोक भी नहीं। मचाखुर्द के निवासियों के पास दो-ढाई बीघा खेती है, लेकिन खेती की लागत और नकदी की जरूरत के चलते वे अक्सर परिवार के भरण-पोषण के लिए मेहनत, मजदूरी करते हैं। गांव के निकट शराब की उपलब्धता ने गांव के पुरुषों को लुभाया और उन्होंने अक्सर काम की थकान मिटाने के नाम पर शराब पीना शुरू कर दिया। शराब की लत लगने पर उससे जुड़े अन्य दुर्गुण भी सामने आने लगे और उन्होंने अपनी पत्नियों-बच्चों तथा अन्य परिजनों के साथ मारपीट करना शुरू कर दिया। मारपीट के साथ धीरे-धीरे आय भी कम हो गई। बिमारियां भी आम बात हो गई है।

बच्चे भी नहीं रहे अछूते

बच्चे अपने परिवार से ही सीखते हैं। गांव के बच्चे जब अपने घर के बड़ों को गुटखा, बीड़ी आदि का सेवन करते देखते हैं तो उनकी नकल कर में वे भी छोटी उम्र से ही इनका सेवन करने लगते हैं। इस तरह पढ़ने लिखने की उम्र में बच्चे नशे में रुचि लेने लगते हैं। धीरे-धीरे ये नशा करना उनकी भी आदत बन जाती है।

- शराब या किसी भी तरह का नशा केवल उस नशे का सेवन करने वाले व्यक्ति को ही प्रभावित नहीं करता।
- इसका असर उसके परिवार और आसपास के समाज पर भी पड़ता है। खासतौर पर नशा करने वाले के बच्चे और उसकी पत्नी इससे अधिक प्रभावित होते हैं।
- किसी भी तरह का नशा व्यक्ति की आर्थिक-शारीरिक और सामाजिक तीनों तरह की क्षमताओं को प्रभावित करता है।

जागरुकता से जगी उम्मीद

संस्था पिछले चार वर्षों से गांव में समुदाय आधारित कुपोषण प्रबंधन परियोजना का संचालन कर रही है। इसके साथ ही वर्ष 2020 से गांव में नशा मुक्ति अभियान भी चल रहा है। गांव की अधिकांश महिलाओं की शिकायत थी कि शराब ने उनके परिवार को बरबाद कर दिया है। संस्था ने अपने अभियान के तहत गांव के स्तर पर महिलाओं और पुरुषों का कोर समूह बनाया।

ये समूह गांव में नशे की लत दूर करने के लिए कई स्तरों पर प्रयास करते हैं।

- नशे के दुष्प्रभावों को लेकर निरंतर बैठकों का आयोजन।
- नशे को लेकर जागरुकता का प्रसार करने के लिए दीवार लेखन और नुक्कड़ नाटक करना।
- सभी के लिए नशा रोकने की चर्चा को सरल और आम बनाना।
- नशे की स्थिति को लेकर अध्ययन करना तथा अपने अध्ययन के परिणामों को प्रशासन के साथ साझा करना।

गांव की महिलाओं के साथ आयोजित ऐसी ही एक बैठक में इस विषय पर चर्चा की गई कि पुरुषों में शराब की लत को कैसे नियंत्रित किया जाए। बैठक में कई तरह के विचार सामने आए। उनमें से एक यह भी था कि गांव के आसपास शराब की बिक्री बंद करवाने का प्रयास किया जाए। आम राय यही थी कि यदि शराब आसानी से नहीं मिले तो पीना बंद भले न हो, लेकिन कम अवश्य हो जाएगा।

यह तय किया गया कि इसके लिए बंजारों से बात की जाएगी और अगर वे बात नहीं मानते हैं तो गांव की महिलाएं स्थानीय पुलिस थाने में इसकी शिकायत करेंगी। यह भी सही है कि शराब पीने वाले पुरुष इस काम में सहयोग नहीं कर रहे हैं, लेकिन इसके बावजूद गांव के ज्यादातर लोगों ने यह शपथ ली है कि गांव को नशा मुक्त बनाने का पूरा प्रयास किया जाएगा।

अब जाखनोद की महिलाएं बदल रही हैं गांव की पहचान!

मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले में स्थित जाखनोद गांव शायद प्रदेश ही नहीं देश का ऐसा इकलौता गांव होगा जहां 50 से अधिक विधवाएं रहती हैं। ये सभी महिलाएं सहरिया आदिवासी समुदाय की हैं। इस गांव के स्त्री-पुरुष सभी नशे की चपेट में हैं। इसी नशे ने इतने बड़े पैमाने पर पुरुषों की जान भी ली है। इतने बड़े पैमाने पर नुकसान होने और विकास संवाद तथा क्राई के नशामुक्ति अभियान की मदद से जागरूक होने के बाद गांव के लोगों ने शपथ ली है कि नशे के सेवन से यथासंभव दूरी बनाई जाएगी।

जाखनोद गांव में एक ऐसा सहरिया आदिवासी परिवार भी रहता है जिसकी कहानी सुनकर किसी का भी दिल सिहर उठे। इस परिवार में तीन पीढ़ियों की विधवा महिलाएं एक साथ रहती हैं। संतो आदिवासी के पति प्रह्लाद की मौत 10 वर्ष पहले हुई थी। उनके बेटे और दुलारी के पति रामसेवक की मौत पांच वर्ष पहले हुई जबकि दुलारी के बेटे गिरिराज की मौत तीन वर्ष पहले हो गई। यानी एक ही परिवार में तीन पीढ़ियों की तीन विधवा स्त्रियां एक साथ रहती हैं। गांव में सहरिया समुदाय की एक-दो नहीं बल्कि 50 से अधिक विधवा स्त्रियां रहती हैं। इनमें से ज्यादातर के पतियों ने नशे की लत के कारण जान गंवा दी है।

यहां क्या पुरुष और क्या महिला, नशा करने में सब बराबर हैं

जाखनोद में यूं तो सभी जातियों के लोग रहते हैं, लेकिन नशे का प्रकोप सबसे अधिक सहरिया आदिवासी समुदाय पर ही देखने को मिलता है। ऐसा भी नहीं है कि केवल पुरुष ही नशा करते हैं, बल्कि महिलाएं भी नशा करने में पीछे नहीं हैं। पुरुषों में जहां शराब, बीड़ी और गुटके के नशे का चलन है वहीं महिलाएं भी गुटका, जर्दा और कुछ हद तक शराब का नशा करती हैं। ज्यादातर पुरुष मेहनत-मशक्कत का काम करते हैं और शाम को अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीते हैं। पोषण की कमी से पहले ही शारीरिक मुश्किलों से जूझ रहे गांव के पुरुषों के लिए शराब तथा अन्य नशे जहर का काम करते हैं। यही वजह है कि गांव में 50 से अधिक लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नशे के कारण मौत के शिकार हो चुके हैं। कई मामलों में खराब पोषण और नशे के बीच लोग टीबी जैसी बीमारी के शिकार हो गए और अपनी जान गंवा बैठे।

आखिर कैसे लगी नशे की लत

जाखनोद गांव में बंजारा समुदाय के लोग रहते हैं। यह समुदाय कच्ची शराब बनाता और बेचता है। जाखनोद में रहने वाले सहरिया समुदाय के अधिकांश कामकाजी युवाओं को नशे की आदत लग गई है। वे मजदूरी करके लौटने पर अपनी थकान मिटाने के लिए शराब का सहारा लेते हैं।

गांव के रहने वाले पप्पू आदिवासी कहते हैं, 'एक बार पीना शुरू करने के बाद वे होश खो बैठते हैं और उन्हें पता ही नहीं चलता कि वे कितनी शराब पी गए। समुदाय में पोषण की स्थिति पहले ही कमजोर है, ऐसे में शराब की लत उनके स्वास्थ्य पर और बुरा प्रभाव डालती है।'

यहां कुछ तथ्य ध्यान देने लायक हैं:

- शराब की आसान उपलब्धता भी लोगों को नशे की ओर धकेलती है।
- प्रायः शारीरिक श्रम करने वाले युवाओं की मजदूरी का बड़ा हिस्सा शराब में खर्च हो जाता है।
- नतीजा, इनके पास अपने खानपान व परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त पैसे नहीं बचते।

नशे के खिलाफ सामुदायिक पहल

क्षेत्र में वर्ष 2019 में विकास संवाद ने क्राई के सहयोग से नशा मुक्ति अभियान की शुरुआत की जिसके तहत गांव के लोगों में अलग-अलग तरीकों से जागरुकता का प्रयास शुरू किया गयाः

- नुक्कड़ नाटक तथा दीवार लेखन जैसे रचनात्मक तरीके अपनाकर नशे के खिलाफ प्रचार किया गया।
- गांव में आम सभा आयोजित करके तथा कोर समूह की बैठकों में भी नशे के दुष्परिणामों के बारे में बात की जाती है ताकि लोग जागरूक हों।

इन्हीं प्रयासों का परिणाम है कि लोगों में नशे के बुरे परिणाम को लेकर जागरुकता बढ़ी और महिलाओं ने इस मुद्दे को गंभीरता से लिया। उनके प्रयासों से ही समुदाय ने यह शपथ ली कि आपसी सहयोग से गांव में नशे के इस्तेमाल पर रोक का प्रयास किया जाएगा। यह भी तय किया गया कि ग्राम सभा के माध्यम से सरकार से मांग की जाएगी कि गांव में देसी शराब बनाने का काम बंद करवाने में वह सहायता करे।

परामर्श से भी बच सकता है बच्चों और महिलाओं का जीवन

शिवपुरी जिले के पोहरी जनपद मुख्यालय से 6 किलोमीटर दूर बसा है सोनीपुरा गांव। यहां संगीता आदिवासी रहती हैं जो धात्री महिला हैं। इनके परिवार में खेती योग्य जमीन और स्थाई रोजगार नहीं होने से उन्हें गांव से बाहर मजदूरी के लिए जाना पड़ता है। इसी मजबूरी के कारण संगीता 7 माह की गर्भवती होने के बाद भी मजदूरी करती रही है। इस बीच वह एनीमिया से पीड़ित भी हो गई। ऐसे में संगीता को एनीमिया से बाहर लाने, सुरक्षित प्रसव कराने और शिशु की देखभाल संबंधी व्यवहार परिवर्तन को सुनिश्चित बनाने में सीएमसी काउन्सलर रानी जाटव के परामर्श और फ्रंट लाइन वर्कर के समन्वित रणनीति की बड़ी भूमिका रही है।

संगीता के परिवार में 3 सदस्य हैं। इसमें उनके अलावा पति परमाल और उसकी एक बच्ची है। बच्ची अभी 29 माह की है। इस वर्ष संगीता का तीसरा प्रसव हुआ। उसका पहला बच्चा जन्म के समय ही खून की कमी के कारण खत्म हो गया था। संगीता और परमाल दोनों मजदूरी करके अपने परिवार का पालन-पोषण करते हैं। उनके पास जमीन नहीं है, इसलिए उन्हें रोजी-रोटी कमाने के लिए नजदीक के जिलों में जाना पड़ता है। गांव में इतना काम नहीं मिलता है कि गुजारा हो सके। इस वजह से संगीता ने गर्भावस्था में भी आलू खोदने और सरसों व गेहूं काटने का काम किया।

5 दिसंबर 2022 को 7वें माह में संगीता पहली बार परामर्श केंद्र पर जांच करवाने आई थी। जांच में संगीता का वजन 47.500 किग्रा, ऊंचाई 154 सेंटीमीटर और हीमोग्लोबिन 10 था। इस दौरान जब संगीता से काउंसलर ने पूछा कि वह उसके गांव सोनीपुरा में दिनांक 19 नवंबर को वजन करने गई थी, तब संगीता क्यों नहीं मिली। इस पर संगीता ने बताया कि वह गांव में कम रहती है, क्योंकि वह पति के साथ ज्यादातर बाहर ही काम करती है। उसने कहा, ''हम अभी कुछ दिन पहले ही घर लौटे हैं। घर आते ही सास ने पोहरी के आपके केंद्र जाने के लिए कहा था। जहां पहले प्रसव के समय अस्पताल पर जांच करवाई गई थी। इसलिए मैं आपके यहां आई हूं।'' इसके बाद रानी जाटव ने संगीता को आंगनवाड़ी केंद्र पर जाकर पंजीयन कराने की बात कही ताकि आवश्यक सेवाएं आसानी से मिल सकें। सीएमसी काउंसलर ने गांव की आशा कार्यकर्ता को फोन करके बताया कि संगीता पति परमाल आदिवासी का 7वां माह चल रहा है। पर उसका अभी तक पंजीयन नहीं हुआ हैं, न ही उसे टीका लगा है।

संगीता को मिली सलाह तो एनीमिया का किया सामना

14 फरवरी को आशा कार्यकर्ता ने संगीता की जांच करवाई। उसका वजन 47 किलो और हीमोग्लोबिन 11 था, लेकिन उस दिन समुदाय स्वास्थ्य केंद्र पर टीका न होने के कारण उसे टीका नही लग सका। तीन दिन बाद 17 फरवरी को उसे टीका लगा। सीएमसी काउंसलर ने टीकाकारण में सहयोग किया। उन्होंने संगीता को टीका लगाया और सलाह दी कि आयरन तथा कैल्शियम की गोलियों का नियमित सेवन करें। क्योंकि आपका पहला और दूसरा प्रसव ऑपरेशन से हुआ है। इस बार खून की कमी न हो इसलिए आयरन की गोलियां और आयरन युक्त भोजन का उपयोग नियमित रूप से करें।

संगीता को जंगल से मिलने वाली भाजियों का उपयोग करना भी बताया गया। उसे केंद्र पर यह भी जानकारी दी गई कि 9वां माह चल रहा है, इसलिए वजन नहीं उठाना है। उसे आशा कार्यकर्ता के साथ शिवपुरी जिला अस्पताल जाकर सोनोग्राफी करवाने की सलाह दी ताकि बच्चे की सही स्थिति पता चले। इससे ऑपरेशन की तारीख भी पता चल जाएगी। यह भी बताया कि इस बार नसबंदी का ऑपरेशन भी साथ में करवा लेना चाहिए। क्योंकि यह तीसरा आपरेशन है, इसमें बहुत खतरा है। सुरक्षित प्रसव के लिए अपनी पूरी देख-भाल करनी जरूरी है।

जरूरत के समय संगीता को मिला ब्लड तो सुरक्षित हुआ प्रसव

20 फरवरी 2023 को आशा कार्यकर्ता ने सीएमसी काउंसलर को बताया कि संगीता को जिला अस्पताल लाए थे पर डॉक्टरों ने मेडिकल कॉलेज के लिए रेफर कर दिया है, इसलिए वह घबरा रही है। इस पर काउंसलर रानी जाटव ने समझाया कि मेडिकल कॉलेज में अच्छी सुविधा है, इसलिए आपरेशन के लिए घबराने की जरूरत नहीं है। फिर अगले दिन आशा का फोन आया कि संगीता को एनीमिक होने के कारण 1 बोतल खून चढ़ चुका है, 1 बोतल और खून की जरूरत है, लेकिन परिवार वालों के पास कोई व्यवस्था नही है। तब काउंसलर ने संगीता के पति परमाल और उसकी सास से समझाया कि ऑपरेशन जरूरी है। उसमें खून भी निकलेगा, इसलिए आपको खून

की व्यवस्था तो करनी पड़ेगी। इसके बाद संगीता के भाई ने एक यूनिट ब्लड डोनेट किया। इस वजह से संगीता का 21 फरवरी को सफल ऑपरेशन से स्वस्थ बच्ची का जन्म हुआ। जन्म के समय शिशु का वजन 2 किलो 700 ग्राम था। ऑपरेशन के बाद संगीता 9 दिन अस्पताल में भर्ती रही।

बेटी के जन्म की खबर सुनते ही काउंसलर रानी ने आशा कार्यकर्ता को बताया कि बच्चे का जन्म ऑपरेशन से हुआ है, इसलिए शिशु को मां का दूध पिलाने में विशेष मदद करनी होगी। इसके आधार पर आशा कार्यकर्ता कमला आदिवासी ने नवजात को मां का पहला दूध पिलाने में संगीता को सहयोग किया। घर लौटने के बाद सीएमसी सलाहकार और आशा कार्यकर्ता ने गृह भेंट कर बच्चे का नियमित टीकाकरण और सिर्फ मां का दूध पिलाने की सलाह दी। इस तरह संगीता को शिशु देखभाल की जानकारी समय-समय पर मिलती रही। संगीता के अनुसार उनके गांव में सही देखभाल न होने और खानपान में कमी के कारण बच्चे कुपोषित होते रहे हैं। सही समय पर मिली जानकारी से उनकी बेटी स्वस्थ है।

निरंतर संवाद और समन्वय से आया बदलाव

सीएमसी सलाहकार द्वारा फ्रंट लाइन कार्यकर्ताओं के साथ लगातार संवाद कर संगीता की सभी एएनसी जांचें व टीकाकरण सुनिश्चित कराया गया। समुदाय स्वास्थ्य केंद्र पोहरी पर उसका तीन बार चेकअप कराया गया। इस दौरान 5 आयरन सुक्रोज की बोतल भी लगवाई गई। इसी के साथ आंगनवाड़ी केंद्र से मिलने वाले टीएचआर दिलवाने में भी सहयोग किया गया। गर्भावस्था के दौरान टेक होम राशन तो मिला ही और संगीता ने संस्था के सहयोग से अपने यहां किचन गार्डन भी लगाया। ताकि खाने के लिए नियमित रूप से हरी सब्जी मिलती रही। इसी तरह पहले करवाए गए मुर्गी पालन से खाने के लिए अंडे भी मिल सके। फिलहाल संगीता के ऑपरेशन के बाद मां और बच्चा दोनों स्वस्थ हैं। मां अपनी लड़की को सीएमसी सलाहकार और कार्यकर्ता द्वारा बताए अनुसार अपना दूध पिला रही है। साथ ही अपने खाने में सामान्य भोजन ले रही है।

गंभीर एनीमिया को हराने का जज्बा है यहां !

सहरिया जनजाति की महिलाओं में कम उम्र में विवाह और अल्प पोषण के कारण एनीमिया की समस्या रही है। इस कारण शुक्रवती आदिवासी जैसी महिला को हाई रिस्क से जूझना पड़ रहा है। इस स्थिति का एक कारण समुदाय द्वारा यौन सुरक्षा संबंधी उपायों को नहीं अपनाना भी है। समुदाय स्तर पर इन सभी मसलों पर व्यवहार परिवर्तन और जागरूकता की दिशा में स्वयंसेवी संस्थाओं की कवायद जारी है।

शुक्रवती पति अतरसिंह आदिवासी की उम्र लगभग 20 वर्ष है। वह मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले के ग्राम मचाखुर्द में रहती हैं। उसके पहले बच्चे का जन्म 27 फरवरी 2021 को हुआ। यह बच्चा सामान्य श्रेणी में है, उसका वजन 10 किग्रा है। जब शुक्रवती पहले बच्चे के समय 4 माह के गर्भ से थी, तब उसका हीमोग्लोबिन 6 ग्राम था। हाई रिस्क में होने के कारण सभी मां-बच्चे की जान को लेकर चिंतित थे। इधर शुक्रवती फिर से गर्भवती हो गई है। उसका 7 वां महीना चल रहा है और वह फिर से हाई रिस्क में है। उसका वजन 38 किलो और हीमोग्लोबिन 8 ग्राम है। शुक्रवती के परिवार में 5 सदस्य हैं। वे अपनी 3 बीघा जमीन पर बरसाती फसल लेने के साथ ही जीवन-यापन के लिए सुपाड़ बारां जिला जाकर खेत मजदूरी करते हैं।

कुपोषण के समुदाय आधारित प्रबंधन कार्यक्रम से जुड़ी परामर्शदाता रानी जाटव बताती हैं कि 13 अक्टूबर 2020 की बात है, जब मचाखुर्द गांव में गर्भवती, धात्री व किशोरियों के स्वास्थ्य परीक्षण के दौरान शुक्रवती के गर्भवती होने का पता चला। तब प्राथमिक जांच में शुक्रवती का वजन 31.900 किग्रा और हीमोग्लोबिन 6 ग्राम पाया गया। उस समय शुक्रवती 4 माह के गर्भ से थी, इसलिए उसमें खून की कमी साफतौर पर दिख रही थी। यह उसके हाई रिस्क में होने का स्पष्ट संकेत था। यह स्थिति मां और बच्चे के लिए बेहद खतरनाक थी, इसलिए तुरंत उसकी सास दाखा को सही खान-पान और नियमित जांच के लिए समझाने-बुझाने का काम शुरू किया गया। शुक्रवती के परिवार को फौरन सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी जाकर स्वास्थ्य जांच कराने और खाने में मेथी, पालक, सहजन जैसी हरी सब्जी के उपयोग करने के बारे में परामर्श दिया गया।

खून की कमी और नियमित स्वास्थ्य जांच

दूसरी कोशिश मचाखुर्द की आंगनवाड़ी कार्यकर्ता के सहयोग से सभी दस्तावेज तैयार करके प्रधानमंत्री मातृत्व वंदना योजना का लाभ दिलाने की हुई, ताकि शासन से मिलने वाली आर्थिक मदद का उपयोग वह अपने पोषण आहार के लिए कर सके। इस तरह समुदाय से लेकर जमीनी अमले के सभी कार्यकर्ता शुक्रवती को एनीमिया संकट से उबारने में जुट गए। 11 नवंबर 2020 को अगले दौरे में परामर्शदाता रानी जाटव ने फिर से शुक्रवती के यहां गृहभेंट कर उसका वजन और हीमोग्लोबिन जांचा। तब वजन 32 किलो और हीमोग्लोबिन 7.5 ग्राम पाया गया। शुक्रवती की सास ने बताया कि उसने शुक्रवती को प्राइवेट डॉक्टर को दिखवाया और आयरन के इंजेक्शन लगवा दिए। इससे कुछ कमजोरी घटी है।

परामर्शदाता ने शुक्रवती की सास को बताया कि आपकी बहू का वजन और हीमोग्लोबिन बढ़ा है इसलिए आप इसका ध्यान रखें। खाने में हरी सब्जियां और फल में अनार, चुकन्दर खिलाएं। उन्होंने शुक्रवती को भारी काम नहीं करने और दिन में 1-2 घंटे तक आराम करने की सलाह भी दी। इसके साथ ही संस्था ने जनवरी 2021 में शुक्रवती को सूखा राशन किट देकर उसके उपयोग की विधि बताई। इस किट में सोयाबीन, दाल, तेल, शक्कर और आटा दिया गया, पोषण आहार बनाकर इसके खाने की विधि बताई गई। सास दाखा बताती है कि ऐसे पोषण आहार से शुक्रवती की सेहत में काफी सुधार आया। इसी बीच 28 जनवरी 2021 को परामर्शदाता जब शुक्रवती के घर गृहभेंट करने गई तो पता चला कि वह मायके गई है। इसके बाद उसकी सास को बहू को अपने घर लाकर विशेष देखभाल करने और अस्पताल में बच्चे का जन्म कराने के लिए तैयार किया गया।

4 फरवरी 2021 को फील्ड कार्यकर्ता के गृहभेंट के दौरान शुक्रवती की सास ने बताया कि हमारी बहू घर आ गई है और उसे चक्कर आ रहे हैं और पेट में भी दर्द है। फील्ड कार्यकर्ता ने उसे तुरंत परामर्श केंद्र आकर जांच कराने की सलाह दी। दो

दिन बाद दाखा शुक्रवती को लेकर पोहरी के परामर्श केंद्र पहुंची। वहां परामर्शदाता ने उसका वजन और हीमोग्लोबिन जांचा। पेट में कभी-कभी दर्द होने की बात पर ध्यान देते हुए उसे स्थानीय सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पर ले जाकर प्रसव पूर्व स्थिति की जांच कराई गई। 9 फरवरी 2021 की जांच में शुक्रवती का वजन 40 किलो और हीमोग्लोबिन 9 ग्राम आया। इसके बाद डॉक्टर ने उसे आयरन व मल्टीविटामिन की दवा दी।

संस्थागत प्रसव और पोषण परामर्श से मिली सुरक्षा

रानी जाटव के अनुसार जैसे–जैसे शुक्रवती के प्रसव का समय नजदीक आता गया, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता से लेकर आशा तक सभी उसकी स्थिति पर ध्यान रखने लगे। शुक्रवती के परिवार को किसी भी तरह की इमरजेंसी या पेट दर्द शुरू होते ही 108 नंबर पर कॉल करके एंबुलेंस बुलाने और सरकारी अस्पताल जाने की प्रक्रिया बताई गई। इस सूचना के 2 दिन बाद यानि 27 फरवरी 2021 को शुक्रवती को प्रसव पीड़ा शुरू हुई। इसके बाद उसे एंबुलेंस से सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी लाया गया। यहां उसके पहले बच्चे सुमेर का सुरक्षित जन्म हुआ। जन्म के समय बच्चे का वजन 2.200 किग्रा था। परिवार को बच्चे और मां के स्वास्थ्य व पोषण पर विशेष ध्यान देने, बच्चे को मां का दूध पिलाना सुनिश्चित किया गया। इसकी देखरेख और फॉलोअप की ज़िम्मेदारी गांव के कोर ग्रुप के सदस्यों और जमीनी स्वास्थ्य कार्यकर्ता द्वारा एक दूसरे के साथ समन्वय करते हुए उठाई गई।

स्वास्थ्य सुरक्षा और सुपोषण के प्रयास

- शुक्रवती के हाईरिस्क गर्भावस्था में होने की पहचान के साथ ही निरंतर गृहभेंट कर, वजन और हीमोग्लोबिन जांच सुनिश्चित की गई। सामुदायिक भागीदारी से उसे हर समय देखभाल के दायरे में रखा गया।
- शुक्रवती के यहां गर्भावस्था के दौरान संस्था द्वारा 10 किलो आटा, 2 किलो दाल, 5 किलो चावल, 2 किलो मूंगफली के दाने, 2 गुड़, 2 तेल, 2 साबुन, 1 किलो सोया बड़ी, सैनटरी पैड, 100 ग्राम हल्दी, 100 ग्राम धनिया, 100 ग्राम मिर्ची, 1 किलो नमक दिया गया।
- शुक्रवती को खुद और बच्चों के पोषण में सुधार हेतु न्यूट्रीमिक्स कार्यक्रम से जोड़ा गया। इसमें न्यूट्रीमिक्स को कैसे बनाना और खिलाना है, इसका प्रशिक्षण देकर उपयोग सुनिश्चित किया गया।
- शुक्रवती के परिवार को शासन के मुर्गी पालन योजना से जोड़ा गया। इसमें 45 चूजे और 1200 रुपए दड़बे के लिए दिए गए। इससे परिवार के सभी सदस्यों को अंडे खाने को मिले। इससे शरीर को जरूरी पोषण मिला।।
- मचाखुर्द में समुदाय की पहल से गहरे हुए तालाब से शुक्रवती के परिवार ने अपने 3 बीघा खेत में सिंचाई की गई। जिससे 20 क्विंटल गेहूं का उत्पादन हुआ। इससे इस सहरिया परिवार को इस वर्ष पलायन पर नही जाना पड़ा।

नैना के जीवन का संघर्ष

शिवपुरी जिले के पोहरी जनपद के डांगबर्वे गांव की रहने वाली 8 वर्षीय नैना उर्फ सकीना आदिवासी अपनी दादी के पास अपने घाव और माता-पिता का साथ नहीं होने का दर्द लिए जी रही थी। नैना के दाईं कांख में एक घाव हुआ है। उसके पिता महेश की कोविड में मृत्यु हो गई और मां मायके चली गई। उसे ससुराल वाले पागल बता रहे थे। इन हालात में विकास संवाद से जुड़े स्थानीय साथियों ने उसके इलाज और शैक्षणिक सहयोग की दिशा में आवश्यक पहल की है।

पढ़िए इस कहानी में ...

नैना उर्फ सकीना आदिवासी पुत्री स्व. महेश आदिवासी महज 8 वर्ष की है। वह इन दिनों संस्था द्वारा डांगबर्वे गांव में कोविड के दौरान संचालित कोचिंग सेंटर में आकर पढ़ने और रचनात्मक गतिविधियों को सीखने का प्रयास कर रही है। कोविड के दौरान उसके पिता की मृत्यु हो गई। इस वजह से परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होती गई। इसी बीच उसकी दाएं हाथ के नीचे कांख में एक घाव हो गया। इसके उपचार के लिए स्थानीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं।

जब माता-पिता का छूटा साथ

नैना की दादी रामकली के अनुसार महेश किशोरावस्था से ही शराब और बीड़ी का नशा करता था। इस वजह से उसे टीबी हो गई थी। उस दौरान रामकली ने कर्ज लेकर बेटे के इलाज की कोशिश भी की, लेकिन वर्ष 2020 में कोविड के कारण उसकी तबीयत अधिक बिगड़ने से मौत हो गई। इस घटना के बाद महेश की पत्नी राधा आदिवासी को मुख्यमंत्री जन कल्याण संबल योजना से दो लाख रुपए की आर्थिक सहायता मिली। इसमें से 1 लाख रुपए रामकली ने बीमारी के इलाज के लिए गिरवी रखे खेत को छुड़ाने के लिए ले लिया। राधा का ऐसा कहना है कि बाकी का 1 लाख उसकी सास ने अपनी बेटी को दिलवा दिया। जब राधा ने पैसा वापस मांगना शुरू किया तब ससुराल वालों ने उसे पागल बताते हुए मानसिक रूप से इतना परेशान किया कि वह अपनी बेटी नैना को छोड़कर मायके चली गई। ऐसे हालात में नैना का घाव बढ़ता रहा और उसकी पढ़ाई भी नहीं हो पा रही थी।

इस बीच विकास संवाद के स्थानीय कार्यकर्ता सुनील शर्मा को बच्ची के बारे में पता चला। उन्होंने उसे अपनी मोटर साइकल से ले जाकर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र पोहरी में डॉक्टर को दिखाया। वहां डॉक्टर ने दो बार में 5-5 दिन की दवा दी और ग्वालियर या भोपाल ले जाकर घाव की कैंसर संबंधी जांच कराने की सलाह दी, लेकिन दादी इसके लिए तैयार नहीं हुई। फिर भी दवा खाते रहने से नैना को दर्द में काफी आराम मिल गया। इसी बीच पता चला कि परिवार की पात्रता पर्ची में नैना का नाम दर्ज नहीं है। तब सामुदायिक कार्यकर्ता ने एसडीएम से मुलाक़ात कर उसका नाम जुड़वाया। इसके बाद, अब इस परिवार को 30 किलो राशन खाद्यान्न के रूप में मिल रहा है।

पढ़ाई में विशेष रुचि ले रही है नैना

अपने गाल और कांख में घाव होने के कारण नैना को खेलने कूदने और लिखने-पढ़ने में काफी दिक्कत रही है। माता-पिता के नहीं होने और दादी के बुजुर्ग होने के कारण किसी ने उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इससे वह स्कूल में भी भर्ती नहीं हो सकी थी। इसका एक कारण यह भी रहा कि वह अपने तीन भाई बहनों में सबसे छोटी है। परिवार के इन हालात की चर्चा सामुदायिक कार्यकर्ता ने गांव के सरकारी शिक्षक और परिवार के अन्य सदस्यों से लगातार की। उन्होंने सबसे पहले बच्ची को संस्था द्वारा चलाए जा रहे कोचिंग सेंटर में नियमित भेजने के लिए दादी को तैयार किया। इस सेंटर पर परामर्श के लिए रखे गए शिक्षक ने नैना पर विशेष ध्यान दिया। वह जल्द ही बुनियादी अक्षर व शब्द ज्ञान, गिनती के साथ ही चित्र बनाने में रुचि लेने लगी। अभी 5 फरवरी 2023 को स्थानीय प्राथमिक स्कूल के टीचर से चर्चा कर उसे एडमिशन दिलाया गया है। इस तरह नैना अब शैक्षणिक और रचनात्मक गतिविधियों में रुचि ले रही है।

जारी है नैना के इलाज की कोशिश

नैना के घाव के इलाज के लिए सामुदायिक कार्यकर्ताओं द्वारा सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र ले जाकर दवा दिलाने और जिले के वरिष्ठ डाक्टरों से सलाह लेने की प्रक्रिया अपनाई गई है। हालांकि परामर्श दाता द्वारा लगातार परिवार की काउंसलिंग की जा रही है। फिलहाल नैना के नियमित पोषण के लिए डाइट चार्ट बनाकर दिया गया है जिसकी उपलब्धता और नियमित उपयोग को संभव बनाने के लिए समुदाय के साथ मिलकर प्रयास जारी है।

जामवती की कहानी बन सकती है समाधान !

जामवती जाटव के पास खुद के रहने का घर तक नहीं था। पति, पत्नी और 4 बच्चों वाले इस परिवार का गुजारा गरीबी रेखा के राशन कार्ड से मिलने वाले 30 किलो राशन पर ही होता था, लेकिन आज जामवती अपने गांव और आसपास के इलाके में आत्मनिर्भरता की मिसाल बन चुकी है। आज उसके पास 15 बकरियां, 8 मुर्गे हैं। वह आर्थिक तौर पर भी मजबूत हो रही है। पढ़िए कि शिवपुरी जिले के जाखनौद गांव की जामवती जाटव ने वंचित समुदाय की महिलाओं के लिए वैकल्पिक आजीविका बढ़ाने की राह में एक नया नेतृत्वकारी उदाहरण कैसे प्रस्तुत किया...

जामवती के परिवार में 4 बच्चों सहित कुल 6 सदस्य हैं। इनके पास खाद्यान्न सुरक्षा के नाम पर सिर्फ गरीबी रेखा का राशन कार्ड है, जिससे 30 किलो राशन मिलता है। यहां तक कि उनके पास रहने के लिए खुद का मकान भी नहीं है। इसलिए उन्हें उनके पड़ोसी ने रहने के लिए अपना कमरा दिया हुआ है। कोविड के दौरान जब सब जगह कामकाज की तंगी थी, तब जामवती के परिवार के लिए गुजारा चलाना काफी मुश्किल हो गया था। इस परिवार के पास दिहाड़ी मजदूरी के अलावा कोई अन्य आय का साधन नहीं था। कोर कमेटी की बैठक के दौरान जामवती ने सामुदायिक कार्यकर्ताओं के साथ बैठक में मुर्गी पालन की इच्छा प्रकट की। अगस्त 2021 में पशु पालन विभाग मप्र द्वारा संचालित बैकयार्ड मुर्गी पालन योजना के तहत जामवती को 48 नग कड़कनाथ प्रजाति के चूजे प्रदान मिले। साथ ही चूजों के बेहतर रखरखाव के लिए उन्हें प्रशिक्षित कर दड़बा बनाने 1200 रु की आर्थिक सहायता भी दी गई।

जब जामवती ने कड़कनाथ मुर्गियों का पालन शुरू किया, तब यह अनुभव हुआ कि इस प्रजाति की मुर्गियां अपने अंडों को सेती (अंडे पर बैठना) नहीं हैं। जिससे नए चूजे पैदा नहीं हो रहे थे। तब उन्होंने देशी प्रजाति का मुर्गा-मुर्गी लाकर इस समस्या का समाधान किया। इससे उनके पास चूजों की संख्या बढ़ने लगी। जामवती बताती हैं कि कड़कनाथ प्रजाति के मुर्गे-मुर्गियों और अंडे की उपलब्धता के बारे में शुरुआत में उन्हें गांव घर में बताना पड़ा, लेकिन बाद में समूह के साथियों ने इसमें उनकी मदद की। शुरुआती 48 चूजों की सुरक्षा अपने आप में एक चुनौती रहा है खासकर झुकने वाली बीमारी के कारण कुछ चूजे मृत भी हुए इसलिए उन्होंने स्थानीय स्तर पर उपलब्ध दाने खिलाकर और साफ-सफाई रखते हुए इन चूजों का पालन पोषण किया। इस काम में उनके बच्चों और पति ने भी काफी सहयोग किया। अंडों और मांस का उपयोग इस परिवार ने अपने भोजन में तो किया ही, साथ ही कुछ जरूरतमन्द परिवारों की भी मदद की। जिनमें कुपोषण और एनीमिया से प्रभावित सदस्य थे।

आय बढ़ी तो शुरू किया बकरी पालन

जब जामवती ने मुर्गीपालन शुरू किया तब सोचा नहीं था कि यह उनकी आजीविका का मजबूत माध्यम बन जाएगा। किन्तु धीरे-धीरे करके जब अंडे और मुर्गे बिकने लगे तब उन्हें अच्छी आय होने लगी। जनजातीय समुदाय में मांसाहार और अंडे के उपभोग की प्रवृत्ति के कारण देशी प्रजाति के मुर्गे व अंडे की अच्छी कीमत मिलने लगी। इस तरह कुछ ही महीनों में उन्होंने 5000 रुपए के मुर्गे और लगभग 3000 रुपए के अंडे बेच लिए। जब यह पैसे हाथ में आए तब जामवती और उनके पति ने बकरी पालन करने की योजना भी बनाई। सामुदायिक कार्यकर्ताओं के साथ उन्होंने इस बारे में चर्चा की और फिर 8 मुर्गे बेचकर देशी नस्ल की एक बकरी खरीद ली। इस बकरी से कुछ दिनों बाद ही एक बकरी का जन्म हुआ। इस तरह उनके पास अब दो बकरियां और मुर्गियां हो गए।

पशुपालन से बेटे की शादी के लिए जुटाए पैसे

जामवती के पति ने गांव के लखन आदिवासी के घर पर दिहाड़ी मजदूरी की। जिसकी मजदूरी 5000 हुई। उन्होंने मजदूरी के बदले में 1 बकरी ले ली। इस तरह जामवती के घर पर तीन बकरियां हो गईं। यह सब साल भर में ही हुआ। इससे मुर्गे, अंडे और दूध का कारोबार चल पड़ा। लोग आस-पड़ोस के गांव से भी आकर यह सब खरीदने लगे। इस तरह वैकल्पिक आजीविका की राह मजबूत हुई तो इस परिवार ने मुर्गे, अंडे और दूध व मांस बेचकर कुछ और बकरियां खरीदी। वर्तमान में इस परिवार के पास 15 बकरियां हैं जबकि अभी 8 मुर्गे बचे हैं। बाकी उन्होंने बिक्री करके घर का खाना-खर्चा चलाया और 12000 रुपए हाल ही में अपने बड़े बेटे की शादी में लगाए हैं। जामवती कहती हैं कि बेटे की शादी में लगभग 1 लाख का खर्च आया जिसके लिए सगे संबंधियों से कर्ज लिया है। पर उसकी चिंता अब नहीं है, क्योंकि हमारे पास मुर्गे और बकरियों का सहारा तो है ही। बेटा भी सक्षम हो गया है। इस तरह जामवती ने मुर्गी पालन और बकरी पालन के माध्यम से आजीविका संवर्धन की नई राह अपने गांव के लोगों को दिखाई है। उनसे प्रेरित होकर कई जरूरतमन्द परिवार इसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। जाखनौद गांव में अपनी बकरियां चराते सुमरन और जामवती के चेहरे पर उभरते पशुपालक के रूप में नई चमक दिखाई दे रही है।

इन कहानियों के बारे में...

सहराना मतलब वह जगह जहां पर मुख्यतः सहरिया आदिवासी निवास करते हैं। देश की उन तीन जनजातियों में से एक जिनके संरक्षण के लिए सरकार को विशेष प्रयास करने है। पर हमने पाया है कि हालात ज्यादा खराब हैं और कोशिशें उतनी ही कम। नतीजा यहां पर पोषण, खाद्य सुरक्षा, पलायन, टीबी, शिक्षा, रोजगार, नशाखोरी, मातृत्व और बाल स्वास्थ्य जैसे गंभीर संकट मौजूद रहे हैं। इन स्थितियों से बाहर आने के लिए पुरजोर कोशिशों की जरूरत है। चाहे सरकारी योजनाओं का बेहतर क्रियान्वयन हो या समझाइश। शिवपुरी जिले के पोहरी ब्लॉक के कुछ गांव में सामाजिक संस्था विकास संवाद ने कुछ साल पहले ऐसा ही बीड़ा उठाया। निरंतर हर मोर्चे पर काम किया और इसके बेहतर परिणाम सामने हैं। इस किताब में शामिल कहानियां यही सीख देती हैं कि बेहतरी की तरफ उठाए गए कदम व्यर्थ नहीं जाते, बदलाव होता है। इस किताब से गुजरते हुए आप यह महसूस भी करेंगे। मंजिल अभी दूर है, लेकिन सफर जारी है।

VIKAS SAMVAD

CHILD RIGHTS AND YOU